ॐ

योग-साधन-माला । ग्रंथ ३

वैदिक-प्राण-विद्या ।

लेखक, मुद्रक और प्रकाशक ।
श्रीपाद दामोदर सातवळेकर
भारतमुद्रणालय, स्वाध्याय-मंडल,
औंध, (जि. सातारा)

तृतीय वार

संवत् १९९०, शक १८५५, सन १९३४

वैदिक प्राण-विद्या।

विषयसूची।

अवैतनिक महावीरोंका स्वागत।

राष्ट्रीय सैन्यमें कई वीर वेतन लेकर युद्धमें जानेवाले होते हैं और कई अवैतनिक स्वयं-सेवक होते हैं। वेतन लेकर युद्ध करनेवाले वीरोंकी अपेक्षा **" अवैतनिक राष्ट्रीयस्वयं-सेवकोंका सन्मान "** अधिक होता है।

अपने शरीरमें भी उक्त प्रकारके दो वीर विद्यमान हैं। दो हात, दो पांव, गुदद्वार, मूत्रद्वार और मुख ये सात कर्मवीर हैं, तथा इनके साथ कार्य करनेवाले दो नाक, दो आंख, दो कान, और त्वचा ये सात ज्ञानवीर हैं। ये दोनों प्रकारके वीरोंके चौदह गण हैं। ये वीर शरीरके संरक्षणके लिये बडा युद्ध करते हैं, परंतु इनको खानपान आदि रूपसे वेतन अवश्य देना चाहिए। यदि वेतन न दिया जायगा, तो इनसे कार्य नहीं हो सकता।

इनकी अपेक्षा अवैतनिक राष्ट्रीय स्वयंसेवकका कार्य करनेवाले एकादश रुद्र प्राणरूपसे इस शरीरमें विद्यमान हैं। पंच प्राण, पंच उपप्राण और एक आत्मा मिलकर ये ग्यारह महावीर होते हैं। विना खानेपीनेके, तथा आराम, विश्राम और निद्रा न लेते हुए, ये वीर शरीरका संरक्षण करनेके लिये दैनिक महायुद्धमें सदाही तत्पर होते हैं। ये महावीर इतने प्रभावशाली होते हैं कि ये स्वयं अपना युद्धरूपी कार्य अपनीही शक्तिसे करते रहते हैं, साथ साथ पूर्वोक्त कर्मवीरों और ज्ञानवीरोंको भी सहायता देते हैं। उक्त वीरोंकी जागनेकी तथा सोनेकी अवस्थामें इनका एक जैसाही निःस्वार्थ कार्य होता रहता है। इसलिये अवैतनिक कार्य करनेवाले इन महावीरोंका शरीर की सुस्थितिके लिये अत्यंत उपयोग है। इनके निष्काम भावसे किये हुए कार्यसेही संपूर्ण शरीरकी सुस्थिति होती है। इसलिये सब शरीररूपी इस राष्ट्रमें इनका माहात्म्य अधिक है और इसी कारण इन महावीरोंकी सर्वत्र पूजा होती हैं। इनकी पूजा करनेका विचार इस पुस्तकमें है।

स्वाध्याय-मंडल
औंध (जि० सातारा.)
फाल्गुन, संवत् १९९०.
} श्रीपाद दामोदर सातवळेकर

ॐ

वैदिक प्राणविद्या ।

मनुष्योंके लिये सब अन्य विद्याओंकी अपेक्षा प्राणविद्याकी अत्यंत आवश्यकता है । मनुष्यके शरीरमें भौतिक और अभौतिक अनेक शक्तियां हैं । उन सब शक्तियोंमें प्राणशक्तिका महत्त्व सर्वोपरि है । सब अन्य शक्तियोंका अस्त होनेपर भी इस शरीरमें प्राणशक्ति कार्य करती है, परंतु प्राणका अस्त होनेपर कोई अन्य शक्ति कार्य करनेके लिये समर्थ नहीं हो सकती । इससे प्राणका महत्त्व स्वयं स्पष्ट हो सकता है ।

इस प्राणकी विद्या वेदमें है या नहीं? और यदि है तो उसका स्वरूप क्या है? यह प्रश्न वारंवार पूछा जाता है । इसका उत्तर निम्न मंत्रही स्वयं दे सकते हैं। वेदमें प्राणविद्याका विस्तारपूर्वक उपदेश है । प्रायः अनेक देवताओंके सूक्तोंमें साक्षात् अथवा परंपरासे प्राणविद्याका उपदेश आता है । परंतु वेदकी प्राणविद्याके संपूर्ण मंत्र अबतक एकत्रित नहीं हुए हैं, इस अवस्थामें प्राणविद्याका स्पष्ट रूपसे उपदेश करनेवाले थोडेसे मंत्र इस लेखमें देनेका यत्न कर रहा हूं ।

ईश्वर सबका प्राण है ।

प्राणाय नमो यस्य सर्वमिदं वशे ॥
यो भूतः सर्वस्येश्वरो यस्मिन्त्सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥

" जिसके आधीन (इदं सर्वं) यह सब जगत् है, उस प्राणके लिये मेरा नमस्कार है। वह प्राण सबका ईश्वर (भूतः) है और उसमें सब जगत् (प्रतिष्ठितं) रहा है । "

यहां "प्राण" शब्दसे परमेश्वरकी विश्वव्यापक जीवनशक्ति कही है। इस परमात्माकी जीवनशक्ति के आधीन यह सब संसार है, इसीके आधार से रहा है और इसीसे सब संसारका नियमन भी हो रहा है। समष्टिदृष्टिसे सर्वत्र प्राणका राज्य है। व्यष्टिदृष्टिसे प्रत्येक शरीरमें भी प्राणकाही आधिपत्य है। प्राणिमात्रके प्रत्येक शरीरमें जो जो इंद्रियादिक शक्तियां हैं, तथा विभिन्न अवयव और इंद्रिय हैं, सब ही प्राणके वशमें हैं। प्राणके आधीन ही सब शरीर है। शरीरमें प्राण ही सब इंद्रियों और अवयवोंका ईश्वर है, क्योंकि उसीके आधार से सब शरीर प्रतिष्ठाको प्राप्त हुआ है। प्राणके विना इस शरीरकी स्थितिही नहीं हो सकती। अर्थात् प्राणके वश होनेसे सब शरीर सुदृढ और नीरोग हो सकता है और प्राणके निर्बल होनेसे सब शरीर निर्बल हो सकता है। इसलिये प्राणको स्वाधीन करनेकी आवश्यकता है।

अपने शरीरमें श्वास-उच्छ्वासरूप प्राण चल रहा है और जन्मसे मरणपर्यंत यह कार्य करता है। सब इंद्रिय और अवयव मर जानेके पश्चात् भी कुछ देरतक प्राण कार्य करता है,इसलिये सबमें प्राणही मुख्य है और वह सबका आधार है।अपने प्राणको केवल साधारण श्वासरूपही समझना नहीं चाहिये, परंतु उसको श्रेष्ठ दिव्य शक्तिका अंश समझना उचित है। मन की इच्छा शक्तिसे प्रेरित प्राण सबही शरीरका आरोग्य संपादन करने में समर्थ होता है, इस दृष्टिसे प्राणका महत्त्व सब शरीर में अधिक है। इसके महत्त्वको समझना और सदा मनमें धारण करना चाहिए। " अपने प्राणके आधीन मेरा सब शरीर है, प्राणके कारण वह स्थिर रहा है और उसकी सब हलचल प्राणकी प्रेरणासे होती है, इस प्रकारके प्राणकी मैं उपासना करूंगा और

उसको अपने आधीन करूंगा। प्राणायामसे उसको प्रसन्न करूंगा और वशीभूत प्राणसे अपनी इच्छानुरूप अपने शरीरमें कार्य करूंगा।" यह भावना मनमें धारण करके अपने प्राणकी शक्तिका चिंतन करना चाहिए।

यह प्राण जैसा शरीरमें है वैसा बाहिर भी है। इस विषयमें निम्नलिखित मंत्र देखिए—

अंतरिक्षस्थ प्राण।

नमस्ते प्राण क्रंदाय नमस्ते स्तनयित्नवे ॥
नमस्ते प्राण विद्युते नमस्ते प्राण वर्षते ॥२॥

"हे प्राण! गर्जना करनेवाले तुझको नमस्कार है। मेघोंमें नाद करनेवाले तुझको नमस्कार है। हे प्राण! चमकनेवाले तुझको नमस्कार है और हे प्राण! वृष्टि करनेवाले तुझको नमस्कार है।"

केवल गरजनेवाले मेघोंका नाम 'क्रंद' है, बडी गर्जना और विद्युत्पात जिनसे होता है उन मेघोंका नाम 'स्तनयित्नु' है; जिनसे बिजुली बहुत चमकती है उनको 'विद्युत्' कहते हैं और वृष्टि करनेवाले मेघोंका नाम है 'वर्षत्'। ये सब मेघ अंतरिक्षमें प्राणको धारण करते हैं और वृष्टिद्वारा वह प्राण भूमंडलपर आता है, और वृक्षवनस्पतियोंमें संचारित होता है। इस प्रकार अंतरिक्षस्थानमें प्राणके वास्तव्यका अनुभव करना चाहिए। इस प्राणका कार्य देखिए—

प्राणका कार्य।

यत्प्राण स्तनयित्नुनाऽभिक्रंदत्योषधीः ॥
प्रवीयन्ते गर्भान् दधतेऽथो बह्वीर्विजायन्ते ॥३॥

"हे प्राण! जब तू मेघोंके द्वारा औषधियोंके सन्मुख बडी

गर्जना करता है, तब औषधियां (प्रवीयन्ते) तेजस्वी होती हैं, (गर्भान् दधते) गर्भ धारण करती हैं और बहुत प्रकारसे विस्तारको प्राप्त होती हैं ।" अंतरिक्षस्थानका प्राण वृष्टिद्वारा औषधि वनस्पतियोंमें आकर वनस्पतियोंका विस्तार करता है। प्राणकी यह शक्ति प्रत्यक्ष देखने योग्य है ।

यत्प्राण ऋतावागतेऽभि क्रंदत्योषधीः ।
सर्वं तदा प्रमोदते यत्किं च भूम्यामधि ॥४॥

"हे प्राण! (ऋतौ आगते) वर्षा ऋतु आतेही जब तू औषधियों के उद्देशसे गर्जना करने लगता है, तब जगत् आनंदित होता है, जो कुछ इस पृथ्वीपर है।"

वृष्टिद्वारा प्राप्त होनेवाले प्राणसे न केवल वृक्षवनस्पतियां प्रफुल्लित होती हैं, परंतु अन्य जीवजंतु और प्राणी भी बडे हर्षित होते हैं । मनुष्य भी इस का स्वयं अनुभव करते हैं ।

देखिये—

यदा प्राणो अभ्यवर्षद्वर्षेण पृथिवीं महीम् ।
पशवस्तत्प्रमोदन्ते महो वै नो भविष्यति ॥५॥

"जब प्राण वृष्टिद्वारा इस बडी भूमिपर वर्षा करता है, तब पशु हर्षित होते हैं [और समझते हैं कि] निश्चयसे अब हम सबकी (महः) वृद्धि होगी ।"

अभिवृष्टा औषधयः प्राणेन समवादिरन् ।
आयुर्वै नः प्रातीतरः सर्वा नः सुरभीरकः ॥६॥

"औषधियोंपर वृष्टि होनेके पश्चात् औषधियां प्राणके साथ भाषण करती हैं कि हे प्राण! तूने हमारी आयु बढा दी है और हम सबको (सुरभीः) सुगंधियुत (अकः) किया है ।"

अंतरिक्षस्थ प्राणका कार्य इस प्रकार पाठक देखें और जगत् में इस प्राणका महत्त्व कितना है, इसका अनुभव करें । पहिले

मंत्रमें प्राणका सामान्य स्वरूप वर्णन किया है उसकी अंतरिक्ष-स्थानीय एक विभूति यहां बता दी है। अब इसीकी वैयक्तिक विभूति बतायी जाती है।

वैयक्तिक प्राण ।

नमस्ते अस्त्वायते नमोऽस्तु परायते ॥
नमस्ते प्राण तिष्ठत आसीनायोत ते नमः ॥ ७॥
नमस्ते प्राण प्राणते नमो अस्त्वपानते ॥
पराचीनाय ते नमः प्रतीचीनाय ते नमः ॥
सर्वस्मै त इदं नमः ॥८॥

" आगमन करनेवाले प्राण के लिये नमस्कार है, गमन करनेवाले प्राणके लिये नमस्कार है। हे प्राण ! स्थिर रहनेवाले और बैठनेवाले प्राण के लिये नमस्कार है ॥ हे प्राण ! (प्राणते) जीवन का कार्य करनेवाले तुझे नमस्कार है। अपानका कार्य करनेवाले तेरे लिये नमस्कार है। आगे बढनेवाले और पीछे हटनेवाले प्राणके लिये नमस्कार है। (सर्वस्मै) सब कार्य करनेवाले तेरे लिये यह मेरा नमस्कार है।"

श्वासके साथ प्राणका अंदर गमन होता है और उच्छ्वासके साथ बाहिर आना होता है। प्राणायाम के पूरक और रेचक का बोध "आयत्, परायत्" इन दो शब्दोंसे होता है। स्थिर (तिष्ठत्) रहनेवाले प्राणसे कुंभक का बोध होता है। और बाह्य कुंभक का ज्ञान 'आसीन' पदसे होता है। "(१) पूरक, (२) कुंभक, (३) रेचक और (४) बाह्य कुंभक" ये प्राणायाम के चार भाग हैं। ये चारों मिलकर परिपूर्ण प्राणायाम होता है। इनका वर्णन इस मन्त्रमें "(१) आयत्, (२) तिष्ठत्, (३) परायत्, (४) आसीन" इन चार शब्दोंसे हुआ है। जो अंदर आनेवाला प्राण होता है, उसको "आयत् प्राण" कहा

जाता है, यही पूरक प्राणायाम है। आने जानेकी गतिका निरोध करके प्राणको अंदर स्थिर किया जाता है, उसको " तिष्ठत् प्राण " कहते हैं। यही कुंभक अथवा अंतःकुंभक प्राणायाम होता है। जो अंदरसे बाहिर जाता है उसको " परायत् प्राण" कहते हैं। यही रेचक प्राणायाम है। सब प्राण रेचक द्वारा बाहिर निकालनेके पश्चात् उसको बाहिर ही बिठलाना "आसीन प्राण" द्वारा होता है। यही बाह्य कुंभक है। प्राणायामके ये चार भाग हैं। इन चारोंके अभ्याससे प्राण वश होता है। यही इस प्राण-देवताकी प्रसन्नता करने का उपाय है, यही प्राण–उपासनाकी विधि है।

प्राण नाम उसका है कि जो नासिका द्वारा छातीमें पहुंचता है। अपान उसका नाम है कि जो नाभिके निम्न देशसे गुदाके द्वार तक कार्य करता है। इन्हीके दो अन्य नाम " प्राचीन और प्रतीचीन " प्राण हैं। प्राणके स्वाधीन रखनेका तात्पर्य प्राण और अपानको स्वाधीन करना है।अपान की स्वाधीनतासे मलमूत्रोत्सर्ग उत्तम प्रकारसे होते हैं और प्राणकी स्वाधीनतासे रुधिरकी शुद्धि होती है। इस प्रकार दोनोंके वशीभूत होनेसे शरीरकी नीरोगता सिद्ध होती है। इस प्रकारकी प्राणकी स्वाधीनता होनेसे प्राणके आधीन सब शरीर है,इसका अनुभव होता है। इसी उद्देशसे मंत्र कहता है कि "सर्वस्मै त इदं नमः" अर्थात् तू सब कुछ है, इसलिये तेरा सत्कार करता हूं। शरीर का कोई भाग तेरी शक्तिके विना कार्य नहीं कर सकता,इसलिये सब अवयवोंमें सब प्रकारका कार्य करनेवाले प्राणका सदाही सत्कार करना चाहिए। हर एक मनुष्यको उचित है कि, वह अपने प्राणकी इस शक्तिका ध्यान करे,विश्वासपूर्वक इस शक्तिका स्मरण रखे, क्योंकि निज आरोग्यकी सिद्ध इसीपर निर्भर है।

इस प्राणशक्तिका इतना महत्त्व है कि इसकी विद्यमानतामें ही अन्य औषधि कार्य कर सकते हैं, परंतु इस शक्तिके कमजोर होनेपर कोई औषधि कार्य नहीं कर सकती। प्राणही सब औषधियोंकी औषधि है। इस विषयमें निम्नलिखित मंत्र देखिये-

प्राणका औषधिगुण ।

या ते प्राण प्रिया तनूर्यो ते प्राण प्रेयसी ॥
अथो यद्भेषजं तव तस्य नो धेहि जीवसे ॥९॥

" हे प्राण! जो तेरा (प्राणमय) प्रिय शरीर है, और जो तेरे (प्राणापानरूप) प्रिय भाग हैं, तथा जो तेरा औषध है, वह (जीवसे) दीर्घजीवनके लिये हमको देओ । "

अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनंदमय ये पांच कोश हैं। इनको पांच शरीर भी कह सकते हैं। इन पांच शरीरोंमेंसे " प्राणमय शरीर " का वर्णन इस मंत्रमें किया है । " प्रियतनू " यह प्राणमय कोश ही है । सब ही इसपर प्रेम करते हैं, सब चाहते हैं कि यह प्राणमय शरीर सदा रहे। प्राण और अपान ये इस शरीरके दो प्रेममय कार्य हैं । प्राणसे शक्तिका संवर्धन होता है और अपानसे विषको दूर करके स्वास्थ्यका संरक्षण होता है । प्राणके अन्दर एक प्रकारका "भेषजं" अर्थात् औषध है। दोषोंको दूर करनेकी शक्तिका नाम(दोष-ध) औष-ध अथवा भेषज होता है । शरीरके सब दोष दूर करना और वहां शरीरमें आरोग्यकी स्थापना करना, यह पवित्र कार्य करना प्राणकाही धर्म है । प्राणका दूसरा नाम "रुद्र" है और रुद्र शब्दका अर्थ वैद्य भी होता है । [इसका वर्णन " रुद्रदेवता का परिचय " और " ऋग्वेदमें रुद्रदेवता " इन दो पुस्तकोंमें विस्तारसे किया है । पाठक वहां ही इस विषयको

देखें ।] इस प्राणमें औषध है, यह वेदका कथन है। इसपर अवश्य विश्वास रखना चाहिए क्यों कि यह विश्वास अवास्तविक नहीं है। अपनी निज शक्तिपर विश्वास रखनेके समानही यह वास्तविक विश्वास है। मानसचिकित्साका यह मूल है। पाठक इस दृष्टिसे इस मंत्रका विचार करें। अपनी प्राणशक्तिसे अपनीही चिकित्सा की जा सकती है। 'मैं अपनी प्राणशक्तिसे अपने रोगोंका निवारण अवश्य करूंगा,' यह भाव यहां धारण करनेसे बडा लाभ होता है।

सर्वरक्षक प्राण।

प्राणः प्रजा अनुवस्ते पिता पुत्रमिव प्रियम् ॥
प्राणो ह सर्वस्येश्वरो यच्च प्राणिति यच्च न ॥१०॥

"जिस प्रकार प्रिय पुत्रके साथ पिता रहता है, उस प्रकार सब प्रजाओंके साथ प्राण रहता है। जो प्राणधारण करते हैं और जो नहीं धारण करते, उन सब का प्राणही ईश्वर है।"

जिस प्रकार पुत्रका संरक्षण करनेकी इच्छा पिता करता है, उसी प्रकार प्राण सबका रक्षण करना चाहता है। सब प्रजाओंके शरीरोंमें नसनाडियोंमें जाकर, वहां रहकर सब प्रजाका संरक्षण यह प्राण करता है। न केवल प्राणधारण करनेवाले प्राणियोंका परंतु जो प्राणधारण नहीं करते हैं, ऐसे स्थावर पदार्थोंका भी रक्षण प्राणही करता है। अर्थात् कोई यह न समझे कि श्वासोच्छ्वास करनेवाले प्राणियोंमें ही प्राण है, परंतु वृक्षवनस्पति, पत्थर आदि पदार्थोंमें भी प्राण है, और इन सब पदार्थोंमें रहकर प्राण सबका संरक्षण करता है। प्राणको पिता के समान पूज्य समझना चाहिए और उसको सब पदार्थोंमें व्यापक समझना चाहिए।

प्राणकी उपासना ।

प्राणो मृत्युः प्राणस्तक्मा प्राणं देवा उपासते ॥
प्राणो ह सत्यवादिनमुत्तमे लोक आदधत् ॥ ११ ॥

"प्राण ही मृत्यु है और प्राणही जीवनकी शक्ति है। इसलिये सब देव प्राणकी उपासना करते हैं। क्योंकि सत्यवादीको प्राणही उत्तम लोकमें पहुंचाता है।'

शरीरसे ण चले जानेसे मृत्यु होता है, और जब तक शरीरमें प्राण कार्य करता है, तब तक ही शरीरमें सामर्थ्य अथवा सहनशक्ति रहती है। इस प्रकार एकही प्राण जीवन और मृत्युका कर्ता होता है। 'देव' शब्दसे इस मंत्रमें इंद्रियोंका ग्रहण होता है । सब इंद्रियां प्राण की ही उपासना करती हैं, अर्थात् प्राणके साथ रहकर अपने अंदर बल प्राप्त करती हैं। जो इंद्रिय प्राणके साथ रहकर बल प्राप्त करता है, वही कार्यक्षम होता है, परंतु जो इंद्रिय प्राणसे वियुक्त होता है, वह मर जाता है । यही प्राण की उपासना है और यही रुद्र की उपासना है । सब देवोंमें महादेवकी शक्ति कैसी कार्य करती है, इसका यहां अनुभव हो सकता है । प्राणही महादेव, रुद्र, शंभु आदि नामोंसे बोधित होता है । व्यक्तिके शरीरमें प्राणही उसकी विभूति है। सब जगत् में उसका स्वरूप विश्वव्यापक प्राणशक्तिही है। इस व्यापक प्राणशक्तिके आश्रयसे अग्नि, वायु, इंद्र, सूर्य आदि देवता-गण रहते हैं और अपना कार्य करते हैं । व्यष्टिमें और समष्टिमें एकही नियम कार्य कर रहा है। व्यष्टिमें प्राणके साथ इंद्रियां रहती हैं और समष्टिमें व्यापक प्राणशक्तिके साथ अग्नि आदि देव रहते हैं। दोनों स्थानोंमें दोनों प्रकारके देव प्राणकी उपासनासे ही अपनी शक्ति प्राप्त करते हैं । तीसरे देव समाज और राष्ट्रमें विद्वान् शूर आदि

प्रकारके हैं। वे सत्यवादी, सत्यनिष्ठ, सत्यपरायण और सत्याग्रही बनकर प्राणायामद्वारा प्राण की उपासना करते हैं। प्राणही इनको उत्तम लोकमें पहुंचाता है अर्थात् इनको श्रेष्ठ बनाता है। अर्थात् प्राण की उपासनासे सब ही श्रेष्ठ बनते हैं।

सत्यसे बलप्राप्ति ।

कई लोक यहां पूछेंगे कि सत्यवादिताका प्राणकी उपासनाके साथ क्या संबंध है? उत्तरमें निवेदन है कि सत्यसे मन पवित्र होता है और उसकी शक्ति बढती है। प्राणकी शक्तिके साथ मानसिक शक्तिका विकास होनेसे बडा लाभ होता है। प्राणायामसे प्राणकी शक्ति बढती है और सत्यनिष्ठासे मनकी शक्ति विकसित होती है। इस प्रकार दोनों शक्तियों का विकास होनेसे मनुष्यकी योग्यता असाधारण हो जाती है। तथा-

सूर्यचंद्रमें प्राण ।

प्राणो विराट् प्राणो देष्ट्री प्राणं सर्व उपासते ॥
प्राणो ह सूर्यश्चंद्रमाः प्राणमाहुः प्रजापतिम् ॥१२॥

"प्राण (वि-राज्) विशेष तेजस्वी है, और प्राण ही (देष्ट्री) सबका प्रेरक है। इसलिये प्राणकी ही सब उपासना करते हैं। सूर्य, चंद्रमा और प्रजापति भी प्राणही हैं।"

प्राण विशेष तेजस्वी है। जबतक शरीरमें प्राण रहता है, तब-तक ही शरीरमें तेज होता है। प्राणके चले जानेसे शरीरका तेज नष्ट होता है। सब शरीरमें प्राणसे ही प्रेरणा होती है। बोलना, हिलना, चलना आदि सब प्राणकी प्रेरणासे ही होता है, अर्थात् शरीरमें तेज और प्रेरणा प्राणसे होती है। इसलिये सब प्राणिमात्र प्राणकी ही उपासना करते हैं किंवा यों समझिए कि जब तक वे प्राणके साथ रहते हैं, तबतकही उनकी स्थिति

होती है। जब वे प्राणका साहचर्य छोड देते हैं तब उनकी मृत्यु-ही होती है। इच्छा न होनेपरभी सब प्राणी प्राणकी ही उपासना कर रहे हैं। यदि मानसिक इच्छाके साथ प्राणोपासना की जायगी, तो निःसंदेह बडा लाभ हो सकता है । क्यों कि इस जीवनका जो वैभव है, वह प्राणसेही प्राप्त हुआ है। इसलिये अधिक वैभव प्राप्त करना है, तो प्रयत्नसे उसकी ही उपासना करनी चाहिए। प्राणायामका यही फल है। इस जगत् में सूर्य चंद्र ये प्राणही हैं। सूर्य किरणोंके द्वारा वायुमें प्राण रखता है और चंद्र अपने किरणोंसे औषधियोंमें प्राण रखता है। मेघ विद्युत् आदि अपने अपने कार्य द्वारा जगत् को प्राण दे ही रहे हैं। अंतमें प्राणोंका प्राण जो प्रजापती परमात्मा है, वह ही सच्चा प्राण है, क्यों कि जीवनकी सब प्राणशक्तिका वह एक मात्र आधार है । यही कारण है कि वेदमें प्रजापति परमात्माका नाम प्राण ही है। अन्यपदार्थोंमें भी प्राण है, देखिए-

धान्यमें प्राण ।

प्राणापानौ व्रीहियवावनड्वान् प्राण उच्यते ॥
यवे ह प्राण आहितोऽपानो व्रीहिरुच्यते ॥ १३ ॥

"प्राण और अपान ही चावल और जौ हैं। (अनड्वान्) बैल ही मुख्य प्राण है। जौ में प्राण रखा है और चावल अपानको कहते हैं।"

मुख्य प्राण एकही है, उसके बलसे शरीरमें प्राण और अपान कार्य करते हैं। इसी प्रकार खेतीमें बैलकी शक्ति मुख्य है, उसकी शक्तिसे ही चावल और जौ आदि धान्य उत्पन्न होता है। वेदमें "अनड्वान्" यह बैलवाचक है। समझो कि शरीररूपी खेतमें यह प्राणरूपी बैल ही खेती करता है और यहांका किसान जीवात्मा है। शरीर क्षेत्र है, जीवात्मा क्षेत्रज्ञ है,प्राण बैल है,और

जीवनव्यवहाररूप खेती यहां चल रही है। वेदमें अनड्वान् शब्दका प्राण अर्थ है, यह न समझनेके कारण कईयोंने बडा अर्थका अनर्थ किया है, देखिए-

अनड्वान् दाधार पृथिवीमुत द्याम् ॥ अथर्व० । ४।११। १

"प्राणका पृथिवी और द्युलोकको को आधार है," यह वास्तविक अर्थ न लेकर,बैलका पृथिवी और द्युलोकको आधार है ऐसा भाव कइयोंने समझा है। यदि पाठक इस अनड्वान् सूक्त का अर्थ इस प्राणसूक्तके अर्थके साथ देखेंगे, तो उनको स्पष्ट पता लग जायगा कि वह अनड्वान् का अर्थ केवल बैलही नही है, प्रत्युत प्राण भी है। इसी कारण इस सूक्त में प्राणका नाम अनड्वान् कहा है। यव प्राण है और चावल अपान है,यह कथन आलंकारिक है। धान्यमें प्राण और अपान अर्थात् प्राणकी संपूर्ण शक्तियां व्याप्त हैं। धान्यका योग्य सेवन करनेसे अपने शरीरमें प्राणादिक आते हैं और अपने शरीरके अवयव बनकर कार्य करते हैं।

प्राणसे पुनर्जन्म ।

अपानति प्राणति पुरुषो गर्भे अंतरा ॥
यदा त्वं प्राण जिन्वस्यथ स जायते पुनः ॥ १४ ॥

"(पुरुषः) जीव गर्भके अंदर प्राण और अपानके व्यापार करता है। हे प्राण! जब तू (जिन्वसि) प्रेरणा करता है, तब वह जीव पुनः उत्पन्न होता है।"

गर्भके अंदर रहनेवाला जीव भी वहांही गर्भमें प्राण और अपानके व्यापार करता है। और इसीलिये वहां उसका जीवन होता है। जब जन्मके समय प्राण जन्म होने योग्य प्रेरणा करता है, तव उसको जन्म प्राप्त होता है। अर्थात् जन्मके अनुकूल प्रेरणा करना प्राणकेही आधीन है। इस मंत्रमें "सः पुनः जायते" यह

वाक्य पुनर्जन्म की कल्पना का मूल वेदमें बता रहा है। जीवात्मा पुनः पुनः जन्म धारण करता है, वह सब प्राणकी प्रेरणासें होता है, यह भाव इस मंत्रमें स्पष्ट है।

प्राणमाहुर्मातरिश्वानं वातो ह प्राण उच्यते ॥
प्राणे ह भूतं भव्यं च प्राणे सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥ १५ ॥

" प्राणको मातरिश्वा कहते हैं, और वायुका नामही प्राण है। भूत, भविष्य और सब कुछ वर्तमान कालमें जो है, वह सब प्राणमें ही रहता है। "

" मातरि- श्वा " शब्दका अर्थ 'माताके अंदर रहनेवाला, माताके गर्भमें रहनेवाला ' है। माताके गर्भमें प्राणरूप अवस्थामें जीव रहता है, इसलिये जीवका नाम 'मातरिश्वा' है। गर्भमें इसकी स्थिती प्राणरूप होनेसे इसका नाम ही प्राण होता है। इस कारण प्राण और मातरिश्वा शब्द समान अर्थ बताते हैं। 'मातरिश्वा' का दूसरा अर्थ वायु है। वायु, वात आदि शब्द भी प्राणवाचक ही हैं। क्यों कि वायुरूप प्राणही हम अंदर लेते हैं और प्राणधारण कर रहे हैं। प्राणका विचार करनेसे ऐसा पता लगता है कि उसके आधारसे भूत, भविष्य और वर्तमानका सबही जगत् रहता है। प्राणके आधारसे ही सब रहता है। प्राणके विना जगत् में किसीकी भी स्थिति नहीं हो सकती। पूर्वजन्म, यह जन्म और पुनर्जन्म ये सब प्राणके कारण होते हैं। अर्थात् भूत, भविष्य, वर्तमान कालमें जो कर्मके संस्कार प्राणमें संचित होते हैं, उनके कारण यथायोग्य रीतिसे पुनर्जन्मादि होते हैं।

अथर्व-चिकित्सा।

आथर्वणीरांगिरसीर्दैवीर्मनुष्यजा उत ॥
ओषधयः प्रजायन्ते यदा त्वं प्राण जिन्वसि ॥ १६ ॥

"हे प्राण ! (यदा) जबतक तू (जिन्वसि) प्रेरणा करता है, तब तक ही आथर्वणी, आंगरसी, दैवी और मनुष्यकृत औषधियां (प्र-जायंते) फल देतीं हैं । "

औषधियोंका उपयोग तब तक ही होता है कि जब तक प्राणकी शक्ति शरीरमें है । जब प्राणकी शक्ति शरीरसे अलग होने लगती है, तब किसी औषधिका कोई उपयोग नहीं होता। इसी सूक्तके मंत्र ९ में "प्राण ही औषधि है कि जो जीवनकी हेतु है" ऐसा कहा है, उसका अनुसंधान इस मंत्रके साथ करना उचित है ।

इस मंत्रमें "(१) आथर्वणीः, (२) आंगिरसीः, (३) दैवीः, और (४) मनुष्यजाः" ये चार नाम चार प्रकारकी चिकित्साओंके बोधक हैं । इसका विचार निम्न प्रकार है- (१) मनुष्यजाः ओषधयः =मनुष्योंकी बनाई औषधियां, अर्थात् कषाय,चूर्ण,अवलेह, भस्म, कल्प आदि प्रकार जो वैद्यों, डाक्टरों और हकीमोंके बनाये होते हैं, उनका समावेश इसमें होता है। ये मानवी औषधियोंके प्रकार हैं । इससे श्रेष्ठ दैवी विधि है । (२) दैवीः औषधयः =आप, तेज, वायु, आदि देवोंके द्वारा जो चिकित्सा की जाती है, वह दैवी चिकित्सा है । जलचिकित्सा, सौरचिकित्सा, वायुचिकित्सा, विद्युच्चिकित्सा, वर्णचिकित्सा आदि सब दैवी प्रकार हैं। सूर्य चंद्र वायु आदि देवताओंके साक्षात्संबंधसे यह चिकित्सा होती है और आश्चर्यकारक गुण प्राप्त होता है, इसलिये इसकी योग्यता बडी है । इसके अतिरिक्त देवयज्ञ अर्थात् हवन आदि द्वारा जो चिकित्सा होती हैं उसका भी समावेश इसमें होता है। देवयज्ञ द्वारा देवताओंकी प्रसन्नता करके, उन देवताओंके जो जो अंश अपने शरीर में हैं, उनका आरोग्य संपादन करना कोई अस्वाभाविक प्रकार नहीं है। यह बात युक्ति-

युक्त और तर्कगम्य भी है। (३) आंगिरसीः औषधयः=अंगों, अवयवों और इंद्रियोंमें एक प्रकारका रस रहता है। जिसके कारण हमारे अथवा प्राणियोंके शरिरकी स्थिति होती है। उस रसके द्वारा जो चिकित्सा होती है वह आंगि-रस-चिकित्सा कहलाती है। मानसिक इच्छाशक्तिकी प्रबल प्रेरणासे इस रसका अंगप्रत्यंगोंमें संचार करनेसे रोगोंकी निवृत्ति होती है। मानसिक चित्तैकाग्र्यका इसमें विशेष संबंध है। रुग्ण अवयवको संबोधित करके नीरोगताके भावकी सूचना देना, तथा रोगीको अपनी निज अंगरसशक्तिकी प्रेरणा करनेके लिये उत्तेजित करना इस विधिमें मुख्य है। निज आरोग्यके लिये बाह्य साधनोंकी निरपेक्षता इसमें होनेसे इसको आंगिरसी चिकित्सा अर्थात् अपने निज अंगोंके रसद्वारा होनेवाली चिकित्सा कहते हैं। (४) आथर्वणीः औषधयः= 'अ-थर्वा' नाम है योगीका। मनकी विविध वृत्तियोंका निरोध करनेवाला, चित्तवृत्तियोंको स्वाधीन रखनेवाला योगी अथर्वा कहलाता है। इस शब्द का अर्थ (अ-थर्वा) निश्चल, स्तब्ध, स्थिर, गतिहीन ऐसा है। स्थितप्रज्ञ, स्थिरबुद्धि, स्थितमति आदि शब्द इसका भाव बताते हैं। योगी लोक तंत्रप्रयोगसे जो चिकित्सा करते हैं उसका नाम आथर्वणी-चिकित्सा होता है। हृदयके प्रेमसे, परमेश्वरभक्तिसे, मानसशक्तिसे और आत्मविश्वाससे मंत्रसिद्धि होती है। यह आथर्वणी चिकित्सा सबसे श्रेष्ठ है, क्यों कि इसमें जो कार्य होता है वह आत्माकी शक्तिसे होता है, इस लिये अन्य चिकित्साओं की अपेक्षा इसकी श्रेष्ठता है, इसमें कोई संदेहही नहीं है। ये सब चिकित्सा के प्रकार तबतक कार्य करते हैं कि जबतक प्राण शरीरमें रहना चाहता है। जब प्राण चले जाता है, तब कोई चिकित्सा फलदायक नहीं हो सकती। इस प्रकार प्राणका महत्त्व विशेष है।

प्राणकी वृष्टि ।

यदा प्राणो अभ्यवर्षीद् वर्षेन पृथिवीं महीम् ।
ओषधयः प्रजायन्ते याः काश्च वीरुधः ॥१७॥

" जब प्राण इस बडी पृथ्वीपर वृष्टि करता है,सब औषधियां और वनस्पतियां बढ जाती हैं ।"

इस मंत्रका पूर्व अर्ध मंत्र पांच में आया है, इसलिये इस मंत्रका संबंध पांचवे मंत्रके साथ देखना उचित है। अंतरिक्षस्थ प्राण वृष्टि द्वारा वृक्षवनस्पतियोंको प्राप्त होता है, यह इस मंत्रका तात्पर्य है ।

प्राणको स्वाधीन करनेवालेकी योग्यता ।

यस्ते प्राणेदं वेद यस्मिंश्चासि प्रतिष्ठितः ॥ सर्वे तस्मै बलिं हरानमुष्मिल्लोक उत्तमे ॥ १८ ॥ यथा प्राण बलिहृतस्तुभ्यं सर्वाः प्रजा इमाः॥ एवा तस्मै बलिं हरान् यस्त्वा शृणवत्सुश्रवः ॥१९॥

" हे प्राण ! जो मनुष्य तेरी इस शक्तिको जानता है और (यस्मिन्) जिस मनुष्यमें तू प्रतिष्ठित होता है, (तस्मै) उस मनुष्यके लिये उस उत्तम लोकमें सबही (बलिं) सत्कारका समर्पण करते हैं ॥ हे प्राण ! (यथा) जिस प्रकार ये सब प्रजाजन तेरा सत्कार करते हैं कि (यः) जो (सु-श्रवाः) उत्तम यशस्वी है और (त्वा) तेरा सामर्थ्य (शृणवन्) सुनता है ।"

जो मनुष्य प्राणकी शक्तिका वर्णन श्रद्धासे सुनता है, प्राणके बलको विश्वाससे जानता है, प्राण का बल प्राप्त करनेमें यशस्वी होता है और जिस मनुष्यमें प्राण उत्तम रीतिसे प्रतिष्ठित और स्थिर रहता है; उसका ही सब सत्कार करते हैं, उसकी स्थिति

उत्तम लोकमें होती है और उसी का यश सर्वत्र फैलता है। प्राणायाम द्वारा जो अपने प्राण को प्रसन्न और स्वाधीन करता है, उसका यश सब प्रकारसे बढता है। इस मंत्रमें "बलि" शब्द का अर्थ सत्कार, पूजा, अर्पण, शक्तिप्रदान आदि प्रकारका है। सब अन्य देव प्राणको ही पूजते हैं, इस बातका अनुभव अपने शरीरमें भी आ सकता है। नेत्र कर्ण नासिका आदि सब अन्य देव प्राणकी ही पूजा करते हैं, प्राणकी उपासनासे ही प्राण की शक्ति उनमें प्रकट होती है। इसी प्रकार प्राणायामकी साधना करनेवाले योगीका सत्कार अन्य सज्जन करते हैं, और उसके उपदेशसे प्राणोपासनाका मार्ग जानकर स्वयं बलवान् बन सकते हैं। यही कारण है कि प्राणायाम करनेवाले योगी की सर्वत्र प्रशंसा होती है।

पिता-पुत्र-संबंध।

अंतर्गर्भश्चरति देवतास्वाभूतो भूतः स उ जायते पुनः ॥
स भूतो भव्यं भविष्यत् पिता पुत्रं प्रविवेशा शचीभिः॥ २० ॥

"(देवतासु आभूतः) इंद्रियादिकोंमें जो व्यापक प्राण है वह ही (अंतः गर्भः चरति) गर्भके अंदर चलता है। जो (भूतः) पहिले हुआ था (सः उ) वह ही (पुनः जायते) फिर उत्पन्न होता है। जो (भूतः) पहिले हुआ था (सः) वह हि (भव्यं भविष्यत्) अब होता है और आगेभी होगा। पिता (शचीभिः) अपनी सब शक्तियोंके साथ (पुत्रं प्रविवेश) पुत्रमें प्रविष्ट होता है।"

सूर्य चंद्र वायु आदि देवताओंके अंश मनुष्यादि प्राणियोंके शरीरमें रहते हैं। वेही आंख नाक आदि अवयव किंवा इंद्रियों के स्थानमें रहते हैं। इन देवताओंमें प्राणकी शक्ति व्याप्त है।

यही व्यापक प्राण पूर्व देहको छोडकर दूसरे गर्भमें प्रविष्ट होता है। अर्थात् एकवार जन्म लेनेके पश्चात् पुनः जन्म लेता है। आत्माकी शक्तियोंका नाम शची है। इंद्रकी धर्मपत्नीका नाम शची होता है। धर्मपत्नीका भाव यहां निजशक्ति ही है। इंद्र जीवात्मा है, और उसकी शक्तियां शची नामसे प्रसिद्ध हैं। पिताका अंश अपनी सब शक्तियोंके साथ पुत्रमें प्रविष्ट होता है। पिताके अंगों, अवयवों और इंद्रियोंके समानही पुत्रके कई अंग, अवयव और इंद्रिय होते हैं। स्वभाव तथा गुणधर्म भी कई अंशमें मिलते हैं। उस बातको देखनेसे पता लग सकता है, कि पिता अपनी शक्तियोंके साथ पुत्रमें किस प्रकार प्रविष्ट होता है। गृहस्थी लोगों को इस बातका विशेष विचार करना चाहिए, क्योंकि प्रजा निर्माण करना उनका ही विषय है। माता पिताके अच्छे और बुरे गुणदोष संतानमें आते हैं, इसलिये मातापिता को स्वयं निर्दोष होकर ही संतान उत्पन्न करनेका विचार करना चाहिए। अर्थात् दोषी मातापिताको संतान उत्पन्न करनेका अधिकार नहीं है।

हंस।

एकं पादं नोत्खिदति सलिलाद्धंस उच्चरन्॥ यदंग स तमुत्खिदेन्नैवाद्य न श्वः स्यान्न रात्रिर्नाहः स्यान्न व्युच्छेत्कदाचन॥ २१॥

"जलसे हंस ऊपर उठता हुआ एक प्रांवको उठाता नहीं। (अंग) हे प्रिय! यदि वह उस पांव को उठावेगा तो आज, कल, रात्रि, दिन, प्रकाश और अंधेरा कुछभी नहीं होगा।"

"हंस" नाम प्राणका है। श्वास अंदर जानेके समय "स" का ध्वनि होता है और उच्छ्वास बाहेर आनेक समय "ह"

का ध्वनि होता है। "ह और स" मिलकर "हंस" शब्द प्राणवाचक बनता है। उसीके अन्य रूप "अ-हंसः, सोऽहं" आदि उपासनाके लिये बनाये गये हैं। इनमें 'हंस' शब्द ही मुख्य है। उलटा शब्द बनानेसे इसीका "सोऽहं" बन जाता है, अथवा 'हंस' के साथ 'ओं' मिलानेसे 'सोऽहं' बन जाता है।

स—ह   ह—स
ओ—म्   म्—ओ (अः)
═══   ═══
सो ऽ हं   हं स

पाठक यहां दोनों प्रकारके रूप देख सकते हैं। सांप्रदायिक झगडोंसे दूर रहकर मूल वैदिक कल्पनाको यदि पाठक देखेंगे तो उनको बडा आश्चर्य प्रतीत होगा। 'ओं' शब्द आत्माका वाचक है और 'हंस' शब्द प्राणका वाचक है। आत्माका प्राणके साथ इस प्रकारका संबंध है। आत्मा ब्रह्माका वाचक है और ब्रह्माका वाहन हंस है, इस पौराणिक रूपकमें आत्माका प्राणके साथका अखंड संबंधही वर्णन किया है। यह हंस मानस-सरोवरमें क्रीडा करता है। यहां प्राणभी हृदयरूपी अंन्तःकरणस्थानीय मानस-सरोवरमें क्रीडा कर रहा है। हृदयकमलमें जीवात्माका निवास सुप्रसिद्ध है। अर्थात् कमलासन ब्रह्मदेव और उसका वाहन हंस, इसकी मूल वैदिक कल्पना यहां स्पष्ट होती है।

ब्रह्मा, ब्रह्मदेव	आत्मा, जीवात्मा, ब्रह्म
हंस-वाहन	प्राण-वाहन
कमल-आसन	हृदय-कमल
मानस सरोवर	अंतःकरण (हृदय)
प्रेरक कर्ता देव	प्रेरक आत्मा

वेदमें हंसका वर्णन अनेक मंत्रोंमें आगया है, उसका मूल आशय इस प्रकार देखना उचित है। वेदमें " असौ अहं " (यजु०४०।१७) कहा है। "असु अर्थात् प्राणशक्तिके अंदर रहनेवाला मैं आत्मा हूं।" यह भाव उक्त मंत्र का है। वही भाव उक्त रूपमें है। प्राणके साथ आत्माका अवस्थान है। यह प्राण ही " हंस " है, वह (सलिलं) हृदयके मानस सरोवर में क्रीडा करता है। श्वास लेनेके समय यह प्राण उस सरोवरमें गोता लगाता है और उच्छ्वास लेनेके समय ऊपर उडता है। यहां प्रश्न उत्पन्न होता है, कि जब उच्छ्वास के समय प्राण बाहिर आता है तब प्राणी मरता क्यों नहीं? पूर्ण उच्छ्वास लेकर श्वासको पूर्ण बाहिर निकालनेपर भी मनुष्य मरता नहीं। इसका कारण इस मंत्रमें बताया है। जिस प्रकार हंस पक्षी एक पांव पानीमें ही रखकर दूसरा पांव ऊपर उठाता है, उसी प्रकार प्राण ऊपर उठते समय अपना एक पांव हृदयके रक्ताशयमें जमाकर रखता है और दूसरे पांवकोही बाहिर उठाता है, कभी दूसरे पांवको हिलाता नहीं। तात्पर्य प्राण अपनी एक शक्तिको शरीरमें स्थिर रखता हुआ दूसरी शक्तिसे बाहिर आकर कार्य करता है। इसलिये मनुष्य मरता नहीं। यदि यह अपने दूसरे पांवकोभी बाहिर निकालेगा तो आज काल, दिन रात, प्रकाश अंधेरा आदि कुछभी नहीं होगा अर्थात् कोई प्राणी जीवित नहीं रह सकेगा। जीवनके पश्चात् ही काल का ज्ञान होता है। इस प्रकारका यह प्राणका संबंध है। प्रत्येक मनुष्यको उत्तम विचार करके इस संबंधका ज्ञान ठीक प्रकारसे प्राप्त करना चाहिए। 'हंस' शब्दके साथ प्राणकी उपासना का प्रकार भी इस मंत्रसे व्यक्त होता है। श्वासके साथ 'स' कारका श्रवण और उच्छ्वासके साथ 'हं'

कारका श्रवण करनेसे प्राण उपासना होती है। इससे चित्तकी एकाग्रता शीघ्रही साध्य होती है। यही "सो" अक्षरका श्रवण श्वासके साथ और "हं" का श्रवण उच्छ्वासके साथ करनेसे हंसकाही जप बन जाता है। यह प्राण उपासनाका प्रकार है। सांप्रदायिक लोगोंने इनपर विलक्षण और विभिन्न कल्पनाएं रची हैं, परंतु मूलकी ओर ध्यान देकर झगडोंसे दूर रहनाही हमको उचित है। अब इसका और वर्णन देखिये—

अष्टाचक्रं वर्तत एकनेमि सहस्राक्षरं प्र पुरो निपश्चा॥
अर्धेन विश्वं भुवनं जजान यदस्यार्धं कतमः स केतुः ॥२२॥

"आठ चक्रोंसे युक्त, सहस्र अक्षरोंसे व्यक्त और एकही केंद्र जिसका है ऐसा यह प्राणचक्र आगे और पीछे चलता है। आधे भागसे सब भुवनोंको उत्पन्न करके जो इसका आधा भाग शेष रहा है वह किसका चिह्न है?"

इस शरीरमें आठ चक्र हैं जिनमें प्राण जाता है और विलक्षण कार्य करता है। मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, सूर्य, अनाहत, विशुद्धि, आज्ञा और सहस्रार ये आठ चक्र हैं। क्रमशः गुदासे लेकर सिरके ऊपरले भागतक आठ स्थानोंमें ये आठ चक्र हैं। पीठके मेरुदंडमें इनकी स्थिति है। इस प्रत्येक चक्रमें प्राण जाता है और अपने अपने नियत कार्य करता है। जो सज्जन प्राणायामका अभ्यास करते हैं, उनको अपना प्राण इस चक्रमें पहुंचा है इस बातका अनुभव होता है, और वहांकी स्थितिका भी पता लगता है। ऊपर मस्तिष्कमें सहस्राक्षर चक्रका स्थान है। यही मस्तिष्कका मध्य और मुख्य भाग है। प्राणका एक केंद्र हृदयमें है। इस प्रकार एक केंद्रके साथ आठ चक्रोंमें सहस्र आरोंके द्वारा आगे और पीछे चलनेवाला यह प्राणचक्र है। श्वास उच्छ्वास तथा प्राण अपान द्वारा प्राणचक्रकी आगे और

पीछे गति है। पाठकों को उचित है कि वे इन बातोंको जानने और अनुभव करनेका यत्न करें। प्राणका एक भाग शरीरकी शक्तियोंके साथ संबंध रखता है और दूसरा भाग आत्माकी शक्तिके साथ संबंध रखता है। शारीरिक शक्तिके साथ संबंध रखनेवाले प्राणके भागका ज्ञान प्राप्त करना बडा सुगम है, परंतु आत्मिक शक्ति के साथ संबंध रखनेवाले प्राणके भागका ज्ञान प्राप्त करना बडा कठिन है। अर्ध भागके साथ सब भुवनको बनाता है, जो इसका दूसरा अर्ध है वह किसका चिह्न है अर्थात् उसका ज्ञान किससे हो सकता है? आत्माके ज्ञानके साथ ही उसका ज्ञान हो सकता है।

नमन और प्रार्थना।

यो अस्य विश्वजन्मन ईशे विश्वस्य चेष्टतः ॥
अन्येषु क्षिप्रधन्वने तस्मै प्राण नमोऽस्तु ते ॥२३॥
यो अस्य सर्वजन्मन ईशे सर्वस्य चेष्टतः ॥
अतंद्रो ब्रह्मणा धीरः प्राणो माऽनु तिष्ठतु॥२४॥

"हे प्राण! (विश्व-जन्मनः) सब को जन्म देनेवाले और इस सब (चेष्टतः) हलचल करनेवाले जगत् का जो ईश है, सब अन्योंमें (क्षिप्र-धन्वने) शीघ्र गतिवाले तेरे लिये नमन है। सब जन्म धारण करनेवाले और हलचल करनेवाले सब का जो स्वामी है, वह धैर्यमय प्राण आलस्यरहित होकर (ब्रह्मणा) आत्मशक्तिसे युक्त होता हुआ (मा) मेरे पास (अनुतिष्ठतु) सदा रहे।"

प्राण सबकाही ईश है, इस विषयमें पहिले ही मंत्रमें कहा है। सबमें गतिमान् और सबमें मुख्य यह प्राण है। ब्रह्म अर्थात् आत्मशक्तिके साथ रहनेवाला यह प्राण आलस्यरहित होकर

और धैर्यके साथ कार्य करनेमें समर्थ बनकर मेरे शरीरमें अनुकूलताके साथ रहे। यह इच्छा उपासकको मनमें धारण करना चाहिए। अन्य इंद्रियोंमें आलस्य होता है, प्राणमें आलस्य कभी नहीं होता; इस लिये प्राणका विशेषण 'अ-तंद्र' अर्थात् आलस्यरहित ऐसा रखा है। यही भाव निम्न मंत्रमें कहा है।

ऊर्ध्वः सुप्तेषु जागार ननु तिर्यङ् नि पद्यते॥
न सुप्तमस्य सुप्तेष्वनु शुश्राव कश्चन॥ २५॥

"(सुप्तेषु) सब सो जानेपरभी यह प्राण (ऊर्ध्वः) खडा रहकर जागता है। कभी तिरछा गिरता नहीं। सबके सो जानेपर इसका सोना किसीने भी सुना नहीं है।"

सब इंद्रियां आराम लेतीं हैं, आलसी बनतीं हैं, सो जातीं हैं और नीचे गिर जातीं हैं; परंतु प्राणही रातदिन खडा रहकर जागता है, अथवा मानो इस मंदिरका संरक्षण करनेके लिये खडा रहकर पहारा करता है। कभी सोता नहीं, कभी आराम नहीं करता और अपने कार्यसे कभी पीछे नहीं हटता। सब इंद्रियां सोतीं हैं परंतु इस प्राणका सोना कभी किसीने सुना ही नहीं। अर्थात् विश्राम न लेता हुआ यह प्राण रातदिन शरीरमें कार्य करता है।

इसी लिये प्राण उपासना निरंतर हो सकती है। देखिए, किसी आलंबनपर दृष्टि रखकर ध्यान करना हो तो दृष्टि थक जाती है। दृष्टि थकनेपर उसकी उपासना नेत्रों द्वारा नहीं हो सकती। इसी प्रकार अन्य इंद्रियां थकतीं हैं और विश्राम चाहतीं हैं, इसलिये अन्य इंद्रियों के साथ उपासना निरंतर नहीं हो सकती। परंतु यह प्राण कभी थकता नहीं और कभी विश्राम नहीं चाहता। इसलिये इसके साथ जो प्राण उपासना की जाती है वह निरंतर हो सकती है। विना रुकावट प्राणो-

पासना हो सकती है, इसलिये इसका अत्यंत महत्त्व है। तथा और देखिए—

प्राण मा मत् पर्यावृतो न मदन्यो भविष्यसि ।
अपां गर्भमिव जीवसे प्राण बध्नामि त्वा मयि ॥२६

"हे प्राण! मेरेसे पृथक् न होओ। मेरेसे दूर न होओ। पानीके गर्भके समान, हे प्राण! जीवनके लिये मेरे अंदर तुझ को बांधता हूं।"

"हे प्राण! मेरेसे दूर न हो जाओ, दीर्घ कालतक मेरे अंदर रहो; मैं दीर्घ जीवन व्यतीत करूंगा, मैं दीर्घ आयुष्यसे युक्त होकर सौ वर्षसेभी अधिक जीवन व्यतीत करूंगा। इस लिये मेरेसे पृथक् न होओ!" यह भावना उपासकको मनमें धारण करना चाहिए। अन्नमय मन है और आपोमय प्राण है, इस लिये प्राणको पानीका गर्भ कहा है। उपासकके मनमें यह भावना स्थिर रहनी चाहिए, कि मैंने प्राणायामादि द्वारा अपने शरीरमें प्राणको बांधकर रख दिया है। इसलिये यह प्राण कभी वियुक्त होकर दूर नहीं होगा। प्राणायामादि साधनोंपर दृढ विश्वास रखकर, उन साधनोंके द्वारा मेरे शरीरमें प्राण स्थिर हुआ है, ऐसा दृढ भाव चाहिए और कभी अकालमृत्युका विचारतक मनमें नहीं आना चाहिए। आत्मापर विश्वास रखनेसे उक्त भावना दृढ हो जाती है। इस प्राणसूक्तमें निम्न भाव हैं—

प्राणसूक्तका सारांश।

(१) प्राणके आधीन ही सब कुछ है, प्राणही सबका मुखिया है।

(२) प्राण पृथ्वीपर है, अंतरिक्षमें है और द्युलोकमें है।

(३) द्युलोकका प्राण सूर्यकिरणों द्वारा पृथ्वीपर आता है, अंतरिक्षका प्राण वृष्टिद्वारा पृथ्वीपर पहुंचता है, और पृथ्वीपर का प्राण यहां सदाही वायुरूपसे रहता है।

(४) अंतरिक्षस्थ और द्युलोकस्थ प्राणसे ही सबका जीवन है। इस प्राणकी प्राप्तिसे सबको आनंद होता है।

(५) एक ही प्राण व्यक्तिके शरीरमें प्राण, अपान आदि रूपमें परिणत होता है। शरीरके अंग, अवयव और इंद्रियोंमें अर्थात् सर्वत्र प्राण ही कार्य करता है।

(६) प्राणही सब औषधियोंकी औषधि है। प्राणके कारण ही सब शरीरके दोष दूर होते हैं। प्राणकी अनुकूलता न होनेपर कोई औषध कार्य नहीं कर सकता, और प्राणकी अनुकूलता होनेपर विना औषध आरोग्य रह सकता है।

(७) प्राण ही दीर्घ आयु देनेवाला है।

(८) प्राण ही सबका पिता और पालक है और सर्वत्र व्यापक भी है।

(९) मृत्यु, रोग और बल ये सब प्राणके कारण ही होते हैं। सब इंद्रिय प्राणके साथ रहनेपर बल प्राप्त करते हैं। श्रेष्ठ पुरुष प्राणको वशमें करके बल प्राप्त कर सकते हैं। सत्यनिष्ठ पुरुष प्राणकी प्रसन्नतासे उत्तम योग्यता प्राप्त करते हैं।

(१०) प्राणके साथ ही सब देवताएं हैं। सबको प्रेरणा करनेवाला प्राण ही है।

(११) धान्यमें प्राण रहता है। वह भोजनके द्वारा शरीरमें जाकर शरीरका बल बढाता है।

(१२) गर्भमें भी प्राण कार्य करता है। प्राणकी प्रेरणासे ही गर्भ बाहिर आता हैं और बढता है।

(१३) प्राणके द्वारा ही पिताके सब गुण कर्म स्वभाव और शक्तियां पुत्रमें आतीं हैं ।

(१४) प्राण ही हंस है और यह हृदयके मानस सरोवरमें क्रीडा करता है। जब यह चले जाता है, तब कुछ भी ज्ञान नहीं होता ।

(१५) शरीरके आठ चक्रोंमें, मस्तिष्कमें तथा हृदयके केंद्रमें भिन्न रूपसे प्राण रहता है। यह स्थूल शक्तिसे सब शरीरका धारण करता है और सूक्ष्म शक्तिसे आत्माके साथ गुप्त संबंध रखता है।

(१६) प्राणमें आलस्य और थकावट नहीं होती है। भीति और संकोच नहीं होता। क्योंकि इसका ब्रह्म अथवा आत्माके साथ संबंध है।

(१७) यह शरीरमें रहता हुआ खडा पहारा करता है। अन्य इंद्रिय थकते, दमते और सोते हैं; परंतु यह कभी थकता नहीं और कभी विश्राम नहीं लेता । इसका विश्राम होनेपर मृत्यु ही होता है।

(१८) इसलिये सबको प्राणकी स्वाधीनता प्राप्त करना चाहिए और उसकी शक्तिसे बलवान् होना चाहिए ।

इस प्रकार इस सूक्तका भाव देखनेके पश्चात् वेदोंमें अन्यत्र प्राणविषयक जो जो उपदेश हैं उनका विचार करते हैं।

ऋग्वेदमें प्राणविषयक उपदेश ।

ऋग्वेदमें प्राणविषयक निम्न मंत्र हैं, उनको देखनेसे ऋग्वेदका इस विषयमें उपदेश ज्ञात हो सकता है। —

प्राणाद्वायुरजायत ॥ ऋ० १०-९०-१३; अ० १९-६-१७

" परमेश्वरीय प्राणशक्तिसे इस वायुकी उत्पत्ति होगई है। "

यह वायु हमारा पृथ्वीस्थानीय प्राण है । वायुके विना क्षणमात्र भी जीवन रहना कठिन है । सबही प्राणी इस वायुको चाहते हैं । परंतु कोई यह न समझे कि यह वायुही वास्तविक प्राण है, क्यों कि परमेश्वरकी प्राणशक्तिसे इसकी उत्पत्ति है । यह वायु हमारे फॅफडोंके अंदर जब जाता है, तब उसके साथ परमेश्वर-की प्राणशक्ति हमारे अंदर जाती है, और उससे हमारा जीवन होता है। यह भाव है कि जो प्राणायामके समय मनमें धारण करना चाहिए। प्राणही आयु है, इस विषयमें निम्न मंत्र देखिए—

आयुर्न प्राणः ॥ (ऋ. १।६६।१)

" प्राणही आयु है । " जबतक प्राण रहता है, तब तक ही जीवन रहता है। इसलिये जो दीर्घ आयु चाहते हैं उनको उचित है, कि वे अपने प्राणको तथा प्राणके स्थानको बलवान् बनावें । प्राणका स्थान फॅफडोंमें बलवान् करनेसे प्राणमें बल आजाता है और उसके द्वारा दीर्घ आयु प्राप्त हो सकती है।

असु-नीति ।

राजनीति, समाजनीति, गृहनीति इन शब्दोंके समान "असु-नीति" शब्द है। राज्य चलानेका प्रकार राजनीतिसे व्यक्त होता है, इसी प्रकार "असु" अर्थात् प्राणोंका व्यवहार करनेकी रीति "असुनीति" शब्दसे व्यक्त होती है। Guide to life, way to life अर्थात् "जीवनका मार्ग" इस भावको "असु-नीति" शब्द व्यक्त कर रहा है, ऐसा प्रो०मोक्षमुल्लर, प्रो. रॉथ आदिका कथन सत्य है। देखिए—

असुनीते पुनरस्मासु चक्षुः पुनः प्राणमिह नो
धेहि भोगं ॥ ज्योक्पश्येम सूर्यमुच्चरंतमनुमते
मृळया न स्वस्ति ॥ ऋ० १०।५९।६

" हे असुनीते ! यहां हमारे अंदर पुनः चक्षु, प्राण और भोग धारण करो । सूर्यका उदय हम बहुत देर तक देख सकें । हे अनुमते ! हम सबको स्वास्थ्यसे युक्त रखो । "

"असुकी नीति" अर्थात् "प्राण धारण करनेकी रीति" जब ज्ञात होती है, तब चक्षुकी शक्ति हीन होनेपर भी पुनः उत्तम दृष्टि प्राप्त की जा सकती है; प्राण जानेकी संभावना होनेपर भी पुनः प्राणकी स्थिरता की जा सकती है, भोग भोगनेकी अशक्यता होनेपरभी भोग भोगनेकी शक्यता हो सकती है। मृत्यु पास आनेके कारण सूर्य-दर्शन अशक्य होनेपर भी दीर्घ आयुष्यकी प्राप्ति होनेके पश्चात् पुनः सूर्यकी उपासना हो सकती है। प्राण-नीतिके अनुकूल मति रखनेसे यह सब कुछ हो सकता है, इसमें कोई संदेह ही नहीं। तथा—

असुनीते मनो अस्मासु धारय जीवातवे सुप्र तिरानु
आयुः॥ रारंधि नः सूर्यस्य संदृशि घृतेन त्वं तन्वं वर्धयस्व॥
(ऋ. १०।५९।५)

" हे असुनीते ! हमारे अंदर मनकी धारणा करो और हमारी आयु बडी दीर्घ करो। सूर्यका दर्शन हम करें। तू घीसे शरीर बढाओ। "

आयुष्य बढानेकी रीति इस मंत्रमें वर्णन की है।पहिली बात मनकी धारणाकी है। मनकी धारणा ऐसी दृढ और पक्की करनी चाहिए कि, मैं योग-साधनादि द्वारा अवश्यही दीर्घ आयु प्राप्त करूंगा,तथा किसी कारण भी मेरी आयु क्षीण नहीं होगी। इस प्रकार मनकी पक्की धारणा करनी चाहिए। मनकी दृढ शक्तिपर ही और मनके दृढ विश्वास परही सिद्धि अवलं- बित होती है। सूर्यप्रकाशका दीर्घ आयुके साथ संबंध वेदमें सुप्रसिद्ध ही है। प्राणायाम आदि द्वारा जो मनुष्य प्राणका बल

बढाना चाहते हैं, उनको घी बहुत खाकर अपना शरीर पुष्ट रखना चाहिए। प्राणायाम बहुत करनेपर घी न खानेसे शरीर कृश होता है। इसलिये प्राणायाम करनेवालोंको उचित है कि वे अपने भोजनमें घी अधिक सेवन करें।

इस प्रकार यह प्राणनीतिका शास्त्र है। पाठक इन मंत्रोंका विचार करके दीर्घ आयु प्राप्त करनेके उपायोंका साधन प्राणायामादि द्वारा करें।

यजुर्वेदमें प्राणविषयक उपदेश।

प्राणकी वृद्धि।

प्राणस्त आप्यायताम् ॥ (यजु० ६।१५)

"तेरा प्राण संवर्धित करो।" प्राणकी शक्ति बढानेकी बडी ही आवश्यकता है, क्योंकि प्राणकी शक्तिके साथही सब अवयवोंकी शक्ति संबंध रखती है। इसकी सूचना निम्न मंत्र दे रहा है—

ऐंद्रः प्राणो अंगे अंगे निदिध्यदैंद्र उदानो अंगे अंगे निधीतः ॥
(यजु० ६।२०)

"(ऐंद्रः प्राणः) आत्माकी शक्तिसे प्रेरित प्राण प्रत्येक अंगमें पहुंचा है, आत्माकी शक्तिसे प्रेरित उदान प्रत्येक अंगमें रखा है।" इस प्रकार आंतरिक शक्तिका वर्णन वेदने किया है। प्रत्येक अंगमें प्राण रहता है परंतु वहां आत्माकी प्रेरणासे कार्य करता है। इस मंत्रसे यह सूचना मिलती है, कि जिस अंग, अवयव अथवा इंद्रियमें प्राणकी शक्ति न्यून होगी, वहां आत्माकी प्रबल इच्छाशक्ति द्वारा प्राणकी शक्ति बढाई जा सकती है। यही पूर्व सूक्तोक्त "आंगि-रस-विद्या" है। अपने किस अंगमें प्राणकी न्यूनता है, इसको जानना और वहां अपनी आत्मिक इच्छाशक्ति

द्वारा प्राणको पहुंचाना चाहिए। यही अपना आरोग्य बढानेका उपाय है। वेदमें जो "आंगिरस-विद्या" है, वह यही है। प्राणका रक्षण करनेके विषयमें निम्न मंत्र देखिए—

प्राणं मे पाह्यपानं मे पाहि व्यानं मे पाहि ॥ (यजु० १४।८;१७)

"मेरे प्राण, अपान, व्यान का संरक्षण करो।" इनका संरक्षण करनेसे ही ये प्राण सब शरीरका संरक्षण कर सकते हैं। तथा-

प्राणं ते शुंधामि ॥ (यजु० ६।१४)

प्राणं मे तर्पयत (यजु० ६।३१)

" प्राणकी पवित्रता करता हूं। प्राणकी तृप्ति कीजिए।" तृप्ति और पवित्रतासे ही प्राणका संरक्षण होता है।

अतृप्त इंद्रिय होनेसे मनुष्य भोगोंकी ओर जाता है, और पतित होता है। इस प्रकार भोगोंमें फंसे हुए मनुष्य अपनी प्राणकी शक्ति व्यर्थ खो बैठते हैं। इसलिये प्राणका संवर्धन करनेवाले मनुष्योंको उचित है कि वे अपना जीवन पवित्रतासे और नित्य-तृप्त वृत्तिसे व्यतीत करें। अपवित्रता और असंतुष्टता ये दो दोष प्राणकी शक्ति घटानेवाले हैं। शक्ति घटानेवाला कोई कार्य नहीं करना चाहिए, क्योंकि—

प्राणं न वीर्यं नसि। (यजु० २२।४९)

" नाकमें प्राणशक्ति और वीर्य बढाओ। " प्राणशक्ति नासिकाके साथ संबंध रखती है, और जब यह प्राणशक्ति बलवान् होती है, तब वीर्य भी बढता है और स्थिर होता है। वीर्य और प्राण ये दोनों शक्तियां साथ साथ रहती हैं। शरीरमें वीर्य रहनेसे प्राण रहता है, और प्राणके साथ वीर्य भी रहता है। एक दूसरेके आश्रयसे रहनेवाली ये शक्तियां हैं। जो मनुष्य ब्रह्मचर्यकी रक्षा करके ऊर्ध्वरेता बनते हैं, उनका प्राण भी बलवान् हो जाता है, और उनको आसानीसे प्राणायामकी सिद्धि होती है।

तथा जो प्रारंभसे प्राणायामका अभ्यास नियमपूर्वक करते हैं, उनका वीर्य स्थिर हो जाता है । यद्यपि किसीका किसी कारण-वश प्रथम आयुमें ब्रह्मचर्य न रहा हो, तो भी वह नियमपूर्वक अनुष्ठानसे उत्तर आयुमें प्राणसाधनसे अपने शरीरमें प्राणशक्ति का संवर्धन और वीर्यरक्षण कर सकता है। जिसका ब्रह्मचर्य आदि प्रारंभसेही सिद्ध होता है, उसको शीघ्र और सहज सिद्धि होती है; परंतु जिसको प्रारंभ से सिद्ध नहीं होता, उसको वह बात प्रयत्न से सिद्ध होती है । प्राणशक्तिके संवर्धनके उपायोंमें गायन भी एक उपाय है—

गायन और प्राणशक्ति ।

साम प्राणं प्रपद्ये । य. ३६।१

'प्राणको लेकर सामकी शरण लेता हूं।' सामवेद गायन और उपासनाका वेद है । ईश उपासना और ईशगुणोंके गायन से प्राणका बल बढता है । केवल गानविद्यासे भी मनकी एका-ग्रता और शांति प्राप्त होती है । इसलिये गायनसे दीर्घ आयु और आरोग्य प्राप्त हो सकता है। गायक लोक यदि दुर्व्यसनोंमें न फसेंगे तो वे अन्योंकी अपेक्षा अधिक दीर्घ आयु और आरो-ग्य प्राप्त कर सकते हैं। गायनका आरोग्यके साथ अत्यंत संबंध है । उपासनाके साथ भी गायनका अत्यंत संबंध है । मन गायन से उपासनामें अत्यंत तल्लीन होता है और यही तल्लीनता प्राण-शक्तिको प्रबल करनेवाली है । यह बात और है कि गायनका धंदा करनेवाले आजकलके स्त्रीपुरुषोंने अपने आचरण बहुतही गिरा दिये हैं। परंतु यह दोष गायनका नहीं है, वह उन मनुष्यों का दोष है । तात्पर्य यह है कि जो पाठक अपने प्राणको बल-वान् करना चाहते हैं, वे सामगान अवश्य सीखें, अथवा साधा-

रण गायन सीखकर उसका उपासनामें उपयोग करके मनकी तल्लीनता प्राप्त करें।

मयि प्राणापानौ। य० ३६।१

'मेरे अंदर प्राण और अपान बलवान रहें।' यह इच्छा हर एक मनुष्य स्वभावतः धारण करता ही है। परंतु कभी कभी व्यवहार उस इच्छासे विरुद्ध करता है। जब इच्छाके अनुसार व्यवहार हो जायगा, तब सिद्धिमें किसी प्रकारका विघ्न हो नहीं सकता। प्रस्तुत प्राणका प्रकरण चला है, इसका संबंध बाहिरके शुद्ध वायुके साथ है, और अंदरका संबंध नासिका आदि स्थानके साथ है इसलिये कहा है —

वातं प्राणेन अपानेन नासिके॥ य० २५।२

"प्राणसे वायुकी प्रसन्नता और अपानसे नासिकाकी पूर्तता करना चाहिए।" बाह्य शुद्ध और प्रसन्न वायुके साथ प्राण हमारे शरीरोंमें जाता है, और नासिका ही उसका प्रवेश द्वार है। बाह्य वायुकी प्रसन्नता और नासिकाकी शुद्धि अवश्य करना चाहिए। नाककी मलिनता और अपवित्रताके कारण प्राणकी गतिमें रुकावट होती है। प्राणकी प्रतिष्ठाके लिये ही हमारे सब प्रयत्न होने चाहिए, इसकी सूचना निम्न मंत्रोंसे मिलती है—

प्राणकी प्रतिष्ठा।

विश्वस्मै प्राणायापानाय व्यानायोदानाय प्रतिष्ठायै चरित्राय॥

य० १३।१९; १४।१२; १५।६४

विश्वस्मै प्राणायापानाय व्यानाय विश्वं ज्योतिर्यच्छ॥

य० १३।२४; १४।१४; १५।५८

प्राणाय स्वाहापानाय स्वाहा व्यानाय स्वाहा॥

य० २२।२३; २३।१८

" प्राण, अपान, व्यान, उदान आदि सब प्राणोंकी प्रतिष्ठा और उनका व्यवहार उत्तम रीतिसे होना चाहिए। सब प्राणोंको तेजस्वी करो। सब प्राणोंके लिये त्याग करो। "

प्रत्येक मनुष्यको उचित है कि वह देखे कि, अपने आचरणसे अपने प्राणोंका बल बढ रहा है या घट रहा है, अपने प्राणोंकी प्रतिष्ठा बढ रही है या घट रही है; अपने प्राणोंके सबही व्यवहार उत्तम चल रहे हैं अथवा किसीमें कोई त्रुटी है; अपने प्राणों का तेज बढ रहा है या घट रहा है। इसका विचार करना हरएक का कर्तव्य है। क्योंकि इनका विचार करनेसे ही हरएक जान सकता है कि मैं प्राणविषयक अपना कर्तव्य ठीक प्रकार कर रह हूं या नहीं। प्राणविषयक कर्तव्यका स्वरूप " स्वाहा " शब्द द्वारा व्यक्त हो रहा है। सब अन्य इंद्रिय गौण हैं और प्राण मुख्य है इस लिये अन्य इंद्रियोंके भोगोका स्वाहाकार संवर्धनके लिये होना चाहिए। अर्थात् इंद्रियोंके भोग भोगनेके लिये जो शक्ति खर्च हो रही है, उसका बहुतसा हिस्सा प्राणकी शक्ति वढानेके लिये खर्च होना चाहिए। मनुष्योंके सामान्य व्यवहारमें देखा जायगा तो प्रतीत होगा कि इंद्रियभोग भोगनेमें यदि शक्तिके १००मेंसे ९९ भागका खर्च हो रहा है तो प्राण संवर्धनमें एक भाग भी खर्च नहीं होता है। मुख्य प्राणके लिये कुछभी शक्ति नहीं खर्च होती परंतु गौण इंद्रियभोगके लिये ही सब शक्तिका व्यय हो रहा है !! क्या यह आश्चर्य नही है? वास्तवमें मुख्यके लिये अधिक और गौणके लिये कम व्यय होना चाहीए यही वेदमे कहा है, कि प्राणसंवर्धनके लिये अपनी शक्तिका स्वाहा करो। अपना समय, अपना प्रयत्न, अपना बल और अपने अन्य साधन प्राणसंवर्धनके लिये कितने खर्च किये जाते हैं और भोगोंके लिये कितने खर्च किये जाते हैं, इसका विचार कीजिए। मनुष्योंका उलटा व्यवहार हो रहा है, इसलिये इस

विषयमें सावधानता रखना चाहिए। प्रतिदिनका ऐसा विभाग करना चाहिये कि जिसमें बहुतसा हिस्सा प्राणवर्धनके कार्यके लिये समर्पित हो सके। देखिए—

राजा मे प्राणः ॥ य. २०।२

"मेरा प्राण राजा है" सब शरीरका विचार कीजिए तो आपको पता लग जायगा कि सबका राजा प्राण ही है। आप समझ लीजिए कि अपना प्राण यह सचमुच राजा है। जब आपके घरमें राजा ही अतिथी आता है, उस समय आप राजाका ही अदरातिथ्य करते हैं, और उनके नौकरोंके तरफ ध्यान अवश्य देते हैं, परंतु जितना राजाकी ओर ध्यान दिया जाता है उतना अन्योंके विषयमें नहीं दिया जाता। यही न्याय यहां है। इस शरीरमें प्राण नामक राजा अतिथी आया है और उसके अनुचर अन्य इंद्रियगण हैं। इसलिये प्राणकी सेवा शुश्रूषा अधिक करना चाहिए, क्योंकि वह ठीक रहा, तो अन्य अनुचर ठीक रह सकते हैं। परंतु यदि राजा असंतुष्ट होकर चले गया तो एकभी अनुचर आपकी सहायता नहीं कर सकेगा।

आजकल इंद्रियोंके भोग बढानेमें सब लोक लगे हैं। प्राणकी शक्ति बढानेका कोई ख्याल नहीं करता !!! इसलिये प्राण अप्रसन्न होकर शीघ्रही इस शरीरको छोड देता है। जब प्राण छोडने लगता है, तब अन्य इंद्रियशक्तियां भी उसके साथ इस शरीरको छोड देती हैं। यही अल्पायुताका कारण है। परंतु इसका विचार बहुतही थोडे लोग प्रारंभसे करते हैं। तात्पर्य इंद्रिय भोग भोगनेके लिये शक्ति कम खर्च करनी चाहिए, इसका संयमही करना चाहिए; और जो बल होगा उसको अर्पण करके प्राणकी शक्ति बढानेमें पराकाष्टा करनी चाहिए। अपने प्राणको बुरे कार्योंमें समर्पित करने से बडी ही हानी होती है। कितने

दुर्व्यसन और कितने कुकर्म हैं कि जिनमें लोक अपने प्राण अर्पण करनेके लिये आनंदसे प्रवृत्त होते हैं !! वास्तवमें सत्कर्मके साथही अपने प्राणोंको जोडना चाहिए। देखिए वेद कहता है—

सत्कर्म और प्राण।

आयुर्यज्ञेन कल्पतां प्राणो यज्ञेन कल्पतां ॥
य० ९।२१; १८।२९; १२।३३

प्राणश्च मेऽपानश्च मे व्यानश्च मे असुश्च मे .. ...
... यज्ञेन कल्पताम् ॥ य० १८।२
प्राणश्च मे यज्ञेन कल्पताम् ॥ य० १८।२२

" मेरी आयु यज्ञसे बढे, मेरा प्राण यज्ञसे समर्थ हो। मेरा प्राण, अपान, व्यान और साधारण प्राण यज्ञद्वारा बलवान बने। मेरा प्राण यज्ञके लिये समर्पित हो। "

यज्ञका अर्थ सत्कर्म है। जिस कर्मके साथ बडोंका सत्कार होता है, सबमें विरोध हटकर एकताकी वृद्धि होती है और परस्पर उपकार होता है वह यज्ञ हुआ करता है। यज्ञ अनेक प्रकारके हैं, परंतु सूत्र रूपसे सब यज्ञोंका तत्व उक्त प्रकारकाही है। इसलिये यज्ञके साथ प्राणका संबंध आनेसे प्राणमें बल बढने लगता है। स्वार्थ तथा खुदगर्जीके कर्मोंमें लगे रहनेसे प्राणशक्तिका संकोच होता है, और जनताके हितके व्यापक कर्म करनेमें प्रवृत्त होनेसे प्राणकी शक्ति विकसित होती है। आशा है कि पाठक इस प्रकारके शुभ कर्मोंमें अपने आपको समर्पित करके अपने प्राणको विशाल करेंगे। वेदमें अग्नि आदि देवताओंका जहां वर्णन आया है वहां उनका प्राणरक्षक गुण भी वर्णन

किया है। क्यों कि जो देवता प्राणरक्षक होगी उसकी ही उपासना करनी चाहिए। देखिए—

प्राणदाता अग्नि ।

प्राणदा अपानदा व्यानदा वर्चोदा वरिवोदाः ॥
य० १७।१५

प्राणपा मे अपानपाश्चक्षुष्पाः श्रोत्रपाश्च मे ॥
वाचो मे विश्वभेषजो मनसोऽसि विलायकः ॥
य० २०।३४

"तू प्राण, अपान, व्यान, तेज और स्वातंत्र्य देनेवाला है। तू मेरे प्राण, अपान, चक्षु, श्रोत्र आदिका संरक्षक है, मेरे वाणी के दोष दूर करनेवाला तथा मनको शुद्ध और पवित्र करनेवाला है।"

प्राणका सत्कर्ममें प्रदान करना, प्राणका संरक्षण करना, इंद्रियोंका संयम करना, वाचाके दोष दूर करने और मनकी पवित्रता करना, यह कार्य सूक्ष्मरूपसे उक्त मंत्रमें कहा है। इतना करनेसे ही मनुष्यका बेडा पार हो सकता है। मन और वाणी की शुद्धता न होनेसे जगत्में कितने अनर्थ हो रहे हैं, इनकी कोई गिनती नहीं हो सकती। मन, वाणी, इंद्रियां और प्राण इन की स्वाधीनता प्राप्त करनेके लिये ही सब धर्म और कर्म होते हैं। इसलिये अपनी उन्नति चाहनेवालोंको इस कर्तव्यकी ओर अपना ख्याल सदा रखना चाहिए। अब प्राणकी विभूति बतानेवाला अगला मंत्र है, देखिए—

अयं पुरो भुवः। तस्य प्राणो भौवायनो वसन्तः प्राणायनः ॥
य० १३।५४

" यह आगे भुवर्लोक है, उसमें रहता है इसलिये प्राणको भौवायन कहते हैं। वसन्त प्राणायन है। "

भूलोक पृथ्वी है, और अंतरिक्ष लोक भुवर्लोक है। यह प्राण का स्थान है, इस आकाशमें प्राण व्यापक है, वायुका और प्राण का एकही स्थान है। अंतरिक्षमें ही दोनों रहते हैं। वसंत प्राण का ऋतु है। क्यों कि इस ऋतुमें सब जगतमें प्राणशक्तिका संचार होकर सब वृक्षोंको नवजीवन प्राप्त होता है। यह प्राणका अवतार हरएकको देखना चाहिए। प्राणके संचारसे जगतमें कितना परिवर्तन होता है, इसका प्रत्यक्ष अनुभव यहां दिखाई देता है। इस ऋतुमें सब वृक्ष आदि नूतन पल्लवोंसे सुशोभित होते हैं, फलोंसे युक्त होनेके कारण पूर्णताको प्राप्त होते हैं। फल फूल और पल्लव ही सब सृष्टीके नवजीवनकी साक्षी देते हैं। इसीप्रकार जिनको प्राण प्रसन्न होता है उनको भी स-फल-ता प्राप्त होती है। जिसप्रकार सब सृष्टि प्राणकी प्रसन्नतासे पुष्पवती और फलवती होती है, उसी प्रकार मनुष्य भी प्राणको वश करनेसे अपने अभीष्टमें सफलता प्राप्त कर सकता है।

प्राणके साथ इंद्रियोंका विकास।

सोनेके समय अपने इंद्रिय कैसे लीन होते हैं और फिर जागृतिके समय कैसे व्यक्त होते हैं, इसका विचार प्रत्येकको करना चाहिए। इससे अपने आत्मा और प्राणशक्तिके महत्वका पता लगता है। इसका प्रकार देखिए—

पुनर्मनः पुनरायुर्म आगन्पुनः प्राणः पुनरात्मा म आगन्।
पुनश्चक्षुः पुनः श्रोत्रं म आगन् वैश्वानरो अदब्धस्तनूपा
अग्निर्नः पातु दुरितादवद्यात्॥ य० ४।१५

"मेरा मन, आयुष्य, प्राण, आत्मा, चक्षु, श्रोत्र आदि पुनः मुझे प्राप्त हुए हैं। शरीरका रक्षक, सब जनोंका हितकारी आत्मा पापोंसे हम सबको बचावे।"

सोनेके समय मन आदि सब इंद्रियां लीन हो गई थीं, यद्यपि प्राण जागता था तथापि उसके कार्यका भी पता हमको नहीं था। वह सब कलके समान आज पुनः प्राप्त हुआ है। यह आत्माकी शक्तिका कितना आश्चर्यकारक प्रभाव है? वह आत्म-शक्ति हमको पापोंसे बचावे। प्राणशक्तिके साथ इन शक्तियोंका लीन होना और पुनः प्राप्त होना, प्रतिदिन हो रहा है। इसका विचार करनेसे पुनर्जन्मका ज्ञान होता है। क्यों कि जो बात निद्राके समय होती है वह ही वैसीही मृत्युके समय होती है। और उसीप्रकार महाप्रलयके समयमें भी होती है। नियम सर्वत्र एकही है। प्राणके साथ अन्य इंद्रियां कैसीं रहतीं हैं, प्राण कैसा जागता है और अन्य इंद्रियां कैसीं थक कर लीन होतीं हैं, इसका विचार करनेसे अपनी आत्मशक्तिका ज्ञान होता है, और वह ज्ञान अपनी शक्तिका विकास करनेके लिये सहायक होता है। अपने प्राणका विश्वव्यापक प्राणके साथ संबंध देखना चाहिए, इसकी सूचना निम्न मंत्र देते हैं—

विश्वव्यापक प्राण।

सं प्राणः प्राणेन गच्छताम् य० ६।१८
सं ते प्राणो वातेन गच्छताम्॥ य० ६।१०

"अपना प्राण विश्वव्यापक प्राणके साथ संगत हो। तेरा प्राण वायुके साथ संगत हो।" तात्पर्य अपना प्राण अलग नहीं है, वह सार्वभौमिक प्राणका एक हिस्सा है। इस दृष्टिसे अपने प्राणको जानना चाहिए। सब अंतरिक्षमें प्राणका समुद्र भरा है,

उसमेंसे थोडासा प्राण मेरे अंदर आकर मेरे शरीरको जीवन दे रहा है, श्वास प्रश्वास द्वारा वह ही सार्वभौमिक प्राण अंदर जा रहा है, इत्यादि भावना मनमें धारण करना चाहिए। तात्पर्य यह सार्वभौमिक दृष्टि सदा धारण करनी चाहिए। सबकी उन्नतिमें एककी उन्नति है, समष्टिकी उन्नतिमें व्यष्टिकी भलाई है यह वैदिक सिद्धांत है। इसलिये समष्टिकी व्यापक दृष्टि प्रत्येक उपासकके अंदर उत्पन्न होनी चाहिए। वह उक्त प्रकार से हो सकती है । इस प्राणकी और बातें निम्न मंत्रमें देखिए-

लडनेवाला प्राण ।

अविर्न मेषो नसि वीर्याय, प्राणस्य पंथा अमृतो ग्रहाभ्याम् ॥
सरस्वत्युपवाकैर्व्यानं नस्यानि बर्हिर्बदरैर्जजान ॥

य० १९।९०

"(मेषः न) मेंढेके समान लडनेवाला (अविः) संरक्षक प्राणवायु वीर्यके लिये (नसि) नाकमें रखा है। (ग्रहाभ्यां) श्वास उच्छ्वास रूप दोनों प्राणोंसे प्राणका अमृतमय मार्ग बना है। (बदरैः उपवाकैः) स्थिर स्तुतियोंके द्वारा (सरस्वती) सुषुम्ना नाडी (व्यानं) सर्व शरीर व्यापक व्यान प्राणको तथा (नस्यानि) नासिकाके साथ संबंध रखनेवाले अन्य प्राणोंको (बर्हिः जजान) प्रकट करती है।"

स्पर्धा करनेवाला, शत्रुके साथ युद्ध करके उसका पराजय करनेवाला मेंढा होता है। यही प्राणका कार्य अपने शरीरमें है। सब व्याधियों और शरीरके सब शत्रुओंके साथ लडकर शरीरका आरोग्य नित्य स्थिर रखनेका बडा कार्य करनेवाला महावीर अपने शरीरमें मुख्य प्राण ही है। यह मेंढेके समान लढता है। इसका नाम "अविः" है क्योंकि यह अवन अर्थात् सब

शरीरका संरक्षण करता है। अवनके अन्य अर्थ भी यहां देखने योग्य हैं–रक्षण, गति, कांति, प्रीति, तृप्ति, ज्ञान, प्रवेश, श्रवण, स्वामित्व, प्रार्थना, कर्म, इच्छा, तेज, प्राप्ति, आलिंगन, हिंसा, दान, भाग और वृद्धि इतने अव् धातुके अर्थ हैं। ये सब अर्थ प्राणवाचक "अवि" शब्दमें हैं। प्राणके कार्य इन शब्दोंसे व्यक्त होते हैं। पाठक इन अर्थोंको लेकर अपने प्राणके धर्म और कर्म जाननेका यत्न करें।

इतने कार्य करनेवाला संरक्षक प्राण हमारी नासिकामें रहा है। नासिका स्थानीय एकही प्राण हमारे शरीरमें उक्त कार्य करता है। यही इसका महत्व है। यह प्राणका मार्ग "अ-मृत" मन है। अर्थात् इस मार्गसे मरण नहीं है। इस मार्गका रक्षण करणेवाले दो ग्रह हैं। "श्वास और उच्छ्वास" ये दो ग्रह इस मार्गका संरक्षण कर रहे हैं। सबको स्वाधीन रखनेवाले, सबका ग्रहण करनेवाले ग्रह होते हैं। श्वास और उच्छ्वासोंसे सब शरीरका उत्तम ग्रहण हो रहा है, इसलिये ये ग्रह हैं। इन दो ग्रहोंके कार्यसे प्राणका मार्ग मरणरहित हुआ है, जब तक श्वास और उच्छ्वास चलते हैं, तब तक मरण होता ही नहीं, इसलिये श्वासोच्छ्वासके अस्तित्वतक शरीरमें "अमृत" ही रहता है। परंतु जब ये दो ग्रह दूर हो जाते हैं, तब मरण आता है।

"इडा पिंगला और सुषुम्ना" ये तीन नाडियां शरीरमें हैं। इनहीको क्रमसे "गंगा यमुना और सरस्वती" कहा जाता है। अर्थात् सरस्वती सुषुम्ना है। इसमें प्राणकी प्रेरक शक्ति है। स्थिर चित्तसे जो उपासना करते हैं, अर्थात् दृढ विश्वाससे जो परमात्मभक्ति करते हैं, उनके अंदर सुषुम्ना द्वारा यह प्राण विशेष प्रभाव बताता है। तात्पर्य उपासनाके साथही प्राणका

बल बढता है। व्यान प्राण वह है कि जो सब शरीरमें व्यापक है, और अन्य नस्य अर्थात् नासिकाके साथ संबंध रखनेवाले प्राण हैं। इन सब प्राणोंकी प्रेरणा उक्त सुषुम्ना करती है। परमेश्वरभक्तिका बल इस सुषुम्नामें बढता है और इसके द्वारा प्राणोंका सामर्थ भी प्रकट होता है।

सरस्वतीमें प्राण

इस मंत्रमें प्राणायाम साधनकी बहुतसीं गुह्य बातें सरल शब्दोंद्वारा लिखीं हैं, इसलिये पाठकोंको इस मंत्रका विशेष विचार करना चाहिए। इसमंत्रमें जिस सरस्वतीका वर्णन आया है उसीका वर्णन निम्न मंत्रमें देखिए—

अश्विना तेजसा चक्षुः प्राणेन सरस्वती वीर्यम् ॥
वाचेंद्रो बलेनेंद्राय दधुरिंद्रियम् ॥ य. २०।८०

" अश्विदेव तेजके साथ चक्षु देते हैं, सरस्वती प्राण शक्तिके साथ वीर्य देती है, इंद्र (इंद्राय) जीवात्माके लिये वाणी और बलके साथ इंद्रियशक्ति अर्पण करता है। "

इसमें सरस्वती जीवनशक्तिके साथ वीर्य देती है ऐसा कहा है। अश्विनौ शब्द भी पूर्वोक्त सुषुम्ना नाडीका वाचक है। अश्विनौ शब्द धन और ऋण शक्तियोंका वाचक है। इस मंत्रमें दो इंद्र शब्द हैं। पहिला परमात्माका वाचक और दूसरा जीवात्माका वाचक है। इंद्रिय शब्द आत्माकी शक्तिका वाचक है। कई लोक सरस्वती शब्दका नदी आदि अर्थ लेकर विलक्षण अर्थ करते हैं, उनको यह बात स्मरण रखना चाहिए कि वैदिक शब्द आध्यात्मिक शक्तियोंके वाचक मुख्यतः हैं, पश्चात् अन्य पदार्थोंके वाचक हैं। अस्तु अब प्राणविषयमें और दो मंत्र देखिए—

भोजन और प्राण ।

धान्यमसि धिनुहि देवान् प्राणाय त्वोदानाय
त्वा व्यनाय त्वा ॥ दीर्घामनु प्रसितिमानुषे धां ॥ य. १।२०
प्राणाय मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व व्यानाय मे वर्चोदा
वर्चसे पवस्वोदानाय मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व ॥ य. ७।२७

" तू धान्य है। देवोंको धन्य करो । प्राण, उदान और व्यानके लिये तेरा स्वीकार करता हूं। आयुष्यकेलिये मर्यादा धारण करता हूं ॥ मेरे प्राण, व्यान और उदानके तेजकी वृद्धि लिये शुद्ध बनो ।"

सात्विक धान्यका आहार इंद्रियादिक देवोंको शुद्ध, पवित्र और प्रसन्न करता है। सात्विक भोजनसे प्राणका बल बढता है और आयुष्य बढता है। शुद्धतासे प्राणकी शक्ति विकसित होती है, इत्यादि बहुत उत्तम भाव उक्त मंत्रोंमें पाठक देख सकते हैं। तथा और एक मंत्र देखिये—

सहस्राक्ष अग्नि ।

अग्ने सहस्राक्ष शतमूर्ध्वं छतं ते प्राणाः सहस्रं व्यानाः ॥
त्वं साहस्रस्य राय ईशिषे तस्मै ते विधेम वाजाय स्वाहा ॥
य. १७।७१

" हे सहस्रनेत्रवाले अग्ने? तेरे सैंकडों प्राण, सैंकडों उदान और सहस्र व्यान हैं। सहस्रों धनोंपर तेरा प्रभुत्व है। इसलिये शक्तिके लिये हम तेरी प्रशंसा करते हैं। "

इस मंत्रका "सहस्राक्ष अग्नि" आत्मा ही है। शतक्रतु, इंद्र, सहस्राक्ष आदि शब्द आत्मावाचक ही हैं। सहस्रतेजोंका धारण करनेवाला आत्माही सहस्राक्ष अग्नि है। प्राण उदान व्यान

आदि सब प्राण शेंकडों प्रकारके हैं। प्रत्येक प्राणका स्थान शरीरमें निश्चित है। हृदयमें प्राण है, गुदाके प्रांतमें अपान है। नाभिस्थानमें समान है,कंठमें उदान है और सर्व शरीरमें व्यान है। प्रत्येक स्थानमें छोटे मोटे अनेक अवयव हैं, और प्रत्येक अवयवके सूक्ष्म भेद सहस्रों हैं। प्रत्येक स्थानमें और सूक्ष्मसे सूक्ष्म भेदमें उस उस प्राणकी अवस्थिति है, तात्पर्य प्रत्येक प्राणके सेंकडों और सहस्रों भेद हो सकते हैं। इस प्रकार यह प्राणशक्तिका विस्तार हजारों रूपोंसे सब शरीर भर सूक्ष्मसे सूक्ष्म अंशमें हुआ है। यही कारण है, कि प्राणशक्ति वश होनेके कारण सब अंग प्रत्यंग अपने आधीन हो जाते हैं और प्राणशक्तिके वश होनेसे सब शरीरकी निरोगता भी सिद्ध हो सकती है।

इस प्रकार यजुर्वेदका प्राण विषयक उपदेश है। यजुर्वेदका उपदेश क्रिया-प्रधान होता है। इसलिये पाठक इस उपदेशको ओर अनुष्ठानकी दृष्टिसे देखें और इस उपदेशको अपने आचरणमें ढालनेका यत्न करें।

सामवेद उपासनात्मक होनेसे प्राणके साथ उसका घनिष्ठ संबंध है। कई उसको उक्त कारणसे " प्राण वेद " भी समझते हैं। उपासना द्वारा जो प्राणका बल बढाना है उतनीही सहायता सामवेदसे इस विषयमें होती है। अन्य बातोंका उपदेश करना अन्य वेदोंका ही कार्य है। इसलिये यहां इतनाही लिखते हैं कि जो परमात्मोपासनाका विषय है, उसको प्राणशक्तिका विकास करनेके लिये पाठक अत्यंत आवश्यक समझें और अनुष्ठान करनेके समय उसको किया करें॥ अब अथर्ववेदका प्राणविषयक उपदेश देखते हैं—

अथर्ववेदका प्राणविषयक उपदेश ।

प्राणापानौ मृत्योर्मा पातं स्वाहा ॥ अ० ३।१६।१
मेमं प्राणो हासीन्मो अपानः ॥ अ० २।२८।३

" प्राण अपान मुझे मृत्युसे बचावें। प्राण अपान इसको न छोडें । " इन मंत्रोंमें प्राणकी शक्तिका स्वरूप बताया है । प्राणकी सहायतासे मृत्युसे संरक्षण होता है । प्राण वशमें आ जायगा तो मृत्युका भय नहीं रहता। मृत्युका भय हटानेके लिये प्राणकी प्रसन्नता करनी चाहिए। देखिए—

प्राण प्राणं त्रायस्वासो असवे मृड ।
निर्ऋत्या नः पाशेभ्यो मुंच ॥ ४ ॥
वातः प्राणः ॥ ५ ॥ अ० १९।४४

" हे प्राण ! हमारे प्राणका रक्षण करो। हे जीवन ! हमारे जीवनको सुखमय करो । हे अनियम ! अनियमके पाशोंसे हमें बचाओ । "

अपनी प्राण शक्तिका संरक्षण करना चाहिए, अपने जीवनको मंगलमय बनाना चाहिये । निर्ऋतिके जालोंसे बचाना चाहिए। " ऋति " का अर्थ-" प्रगति, उन्नति, सन्मार्ग, उत्कर्ष, अभ्युदय, योग्यता, सत्य, सीधा मार्ग, संरक्षण, पवित्रता " इतना है। अर्थात् निर्ऋतिका अर्थ-अवनति, कुमार्ग, अपकर्ष,अयोग्य रीति, असन्मार्ग, तेढीचाल, घातपातकी रीती, अपवित्रता यह होता है। निर्ऋतिके साथ जानेवाला निःसंदेह अधोगतिको चले जाता है । इसलिये इस तेढमार्गके भ्रमजालसे बचनेकी सूचना उक्त मंत्रमें दी है । हरएक मनुष्य, जो उन्नति चाहता है, सावधान रहता हुआ अपने आपको इस अधोगतिके मार्गसे बचावे। निर्ऋतिके जाल प्रारंभमें बडे सुंदर दिखाई देते हैं। परंतु जो

उनमें एकवार फंसता है, उनको उठाना बडा मुष्किल प्रतीत होता है। सब प्रकारके दुर्व्यसन, भ्रम, आलस्य, छल कपट आदि सबही इस निर्ऋतिके जालके रूप हैं। जो लोक इस जाल में फंसते हैं उनको उठना मुष्कील हो जाता है। इसलिये उन्नति चाहनेवाले सज्जनोंको उचित है कि, वे इस बुरे रास्तेसे अपने आपको बचावें। योग साधन करनेवालोंको यह उपदेश अमूल्य है। योगके यम नियम इसी उपदेशके अनुसार बने हैं। अपने विषयमें किस प्रकारकी भावना करनी चाहिए इसका उपदेश निम्न मंत्रमें किया है—

मैं विजयी हूँ।

सूर्यो मे चक्षुर्वातः प्राणो अंतरिक्षमात्मा पृथिवी शरीरम्।
अस्तृतो नामाहमयमस्मि स आत्मानं निदधे द्यावापृथि-
वीभ्यां गोपीथाय॥ अ० ५।९।७

सूर्य मेरा नेत्र है, वायु मेरा प्राण है, अंतरिक्षस्थ तत्व मेरा आत्मा है, पृथिवी मेरा स्थूल शरीर है। इस प्रकारका मैं अपराजित हूं। मैं अपने आपको द्यु और पृथिवी लोकके अंतर्गत जो कुछ है उस सबके संरक्षण के लिये अर्पण करता हूं।"

आत्मशक्तिका विकास करनेकेलिये समष्ठिकी भलाईके लिये अपने आपको समर्पित करना चाहिए। और अपने आँतरिक शक्तियोंके साथ बाह्यदेवताओंका संबंध देखना चाहिए। इतना ही नही प्रत्युत बाह्य देवताओंके अंश अपने शरीरमें रहे हैं.और बाह्य देवताओंके सूक्ष्म अंशोंका बना हुआ मैं एक छोटासा पुतला हूं, ऐसी भावना धारण करके अपने आपको देवताओं का अंशरूप, तथा अपने शरीरको देवतओंका संघ अथवा मंदिर समझना चाहिए। योग साधनमें यही भावना मुख्य है।

अपने आपको निकृष्ट और हीन दीन समझना नहीं चाहिए परंतु (अहं अस्तृतः अस्मि I am invincible) मैं अपराजित हूं, मैं शक्तिशाली हूं, इस प्रकारकी भावना धारण करना चाहिए। देखिए वेदका कैसा उपदेश है, और साधारण लोक क्या समझ रहे हैं। जैसे जिसके विचार होंगे वैसीही उसकी अवस्था बनेगी। इसलिये अपने विषयमें कदापि तुच्छ बुद्धि धारण करना उचित नहीं है। प्राणायाम करनेवाले सज्जनको तो अत्यंत आवश्यक है कि अपने शरीरको देवताओंका मंदिर, ऋषियोंका आश्रम समझे और अपने आपको उसका अधिष्ठाता तथा परमात्माका सहचारी समझे। अपनी भावना जैसी दृढ होगी वैसाही अनुभव आ सकता है। वेदमें—

पंचमुखी महादेव।

प्राणापानौ व्यानोदानौ अ० ११।८।२६

प्राण, अपान, व्यान, उदान आदि नाम आगये हैं। उप प्राणों के नाम वेदमें दिखाई नहीं दिये। किसी अन्य रूपसे होंगे तो पता नहीं। यदि किसी विद्वानको इस विषयमें ज्ञान हो तो उस को प्रकाशित करना चाहिए। पंच प्राणही पंचमुखी रुद्र हैं, रुद्रके जितने नाम हैं वे सब प्राणवाचकही हैं। महादेव, शंभु आदि सब रुद्रके नाम प्राणवाचक हैं। महादेवके पांच मुख जो पुराणोंमें हैं उनका इस प्रकार मूल विचार है। महादेव मृत्युंजय कैसा है, इसका यहां निर्णय होता है। शतपथमें एकादश रुद्रों-का वर्णन है।

कतमे रुद्रा इति। दशेमे पुरुषे प्राणा आत्मैकादशः॥
शत-ब्रा. १४।५

" कौनसे रुद्र हैं ? पुरुषमें दश प्राण हैं और ग्यारहवां आत्मा है। ये ग्यारह रुद्र हैं। " अर्थात् प्राणही रुद्र है, और इसलिये भव, शर्व, पशुपति आदि देवताके सब सूक्त अपने अनेक अर्थोंमें प्राणवाचक एक अर्थ भी व्यक्त करते हैं। पशुपति शब्द प्राणवाचक माननेपर पशु शब्दका अर्थ इंद्रिय ऐसाही होगा। इंद्रियोंका घोडे, गौवें, पशु आदि अनेक प्रकारसे वर्णन कियाही है। इस रीतिसे वेदमें अनेक स्थानमें प्राणकी उपासना दिखाई देगी। आशा है कि पाठक इस प्रकार वेदका विचार करेंगे। इस लेखमें रुद्रवाचक सब सूक्तोंका प्राणवाचक भाव बतानेके लिये स्थान नहीं है, इस लिये इस स्थानपर केवल दिग्दर्शनही किया है। अग्नि शब्दभी विशेष प्रसंगमें प्राणवाचक है। पंच प्राण, पंच अग्नि, प्राणाग्निहोत्र आदि शब्दोंद्वारा प्राणकी अग्निरूपता सिद्ध है। इस भावको देखनेसे पता लगता है कि, अग्निदेवताके मंत्रोंमें भी प्राणका वर्णन गौण वृत्तिसे है। मध्यस्थानीय देवताओंमें वायु और इंद्र ये दो देवताएं प्रमुख हैं। वायु देवताकी प्राणरूपता सुप्रसिद्धही है। स्थान सान्निध्यसे इंद्रमें भी प्राणरूपत्व आसकता है। इस दृष्टिसे इंद्र देवताके मंत्रोंसे भी वेदमें प्राणका वर्णन मिल सकता है। इस प्रकार अनेक देवताओं द्वारा वेदमें प्राणशक्तिका वर्णन है। किसी स्थानपर व्यष्टिदृष्टिसे है और किसी स्थानपर समष्टिदृष्टिसे है। यह सब प्राणका वर्णन एकत्र करनेसे ग्रंथविस्तार बहुत हो सकता है, इसलिये यहां केवल उतनाही लेख लिखा जाता है कि जिन मंत्रोंमें स्पष्ट रूपसे प्राणका वर्णन आगया है। अब प्राणकी सत्ता कितनी व्यापक है, उसका वर्णन निम्न मंत्रोंमें देखिये—

प्राणका मीठा चाबुक।

महत्पयो विश्वरूपमस्याः समुद्रस्य त्वोत रेत आहुः ॥
यत एति मधुकशा रराणा तत्प्राणस्तदमृतं निविष्टम् ॥२॥
मातादित्यानां दुहिता वसूनां प्राणः प्रजानाममृतस्य नाभिः ॥
हिरण्यवर्णा मधुकशा घृताची महान्गर्भश्चरति मर्त्येषु ॥४॥

अथर्व. ९।१

"(अस्याः) इस पृथिवीकी और समुद्रकी बडी (रेतः) शक्ति तू है ऐसा सब कहते हैं। जहांसे चमकता हुआ मीठा चाबुक चलता है वह ही प्राण और वह ही अमृत है॥ आदित्योंकी माता वसुओंकी दुहिता, प्रजाओंका प्राण और अमृतकी नाभि यह मीठा चाबुक है। यह तेजस्वी, तेज उत्पन्न करनेवाली और (मर्त्येषु गर्भः) मर्त्योंके अंदर संचार करनेवाली है॥"

इस मंत्रमें "मधु-कशा" शब्द है। "मधु" का अर्थ मीठा स्वादु है। और "कशा" का अर्थ चाबुक है। चाबुक घोडा गाडी चलानेवालेके पास होता है। चाबुक मारनेसे गाडीके घोडे चलते हैं। उक्त मंत्रोंमें "मधु-कशा" अर्थात् मीठा-चाबुकका वर्णन है। यह मीठा-चाबुक अश्विनी देवोंका है। अश्विनी देव प्राणरूपसे नासिका स्थानमें रहते हैं। प्राण, अपान, श्वास, उच्छ्वास, दांये और बांये नाकका श्वास यह अश्विनीदेवोंका प्राणमयरूप शरीरमें है। इस शरीरमें अश्विनीरूप प्राणोंका 'मीठा-चाबूक' कार्य कर रहा है और शरीररूपी रथके इंद्रिय-रूप घोडोंको चला रहा है। इस चाबूकका यह स्वरूप देखनेसे वेदके इस अद्वितीय और विलक्षण अलंकारकी कल्पना पाठकोंके मनमें स्थिर हो सकती है। यह प्राणोंका मीठा चाबुक हम सबको प्रेरणा कर रहा है। इसकी प्रेरणाके विना इस शरीरमें

कोई कार्य होता नहीं है। इतनाही नहीं परंतु सब जगत्में यह 'मीठा-चाबुक' ही सबको गति दे रहा है। सब जगत्में यह प्राणका कार्य देखने योग्य है। मंत्र कहता है कि "इस मीठे-चाबुकमें पृथ्वी और जलकी सब शक्ति रहती है। जहांसे यह मीठा-चाबुक चलाया जाता है वहां ही प्राण और अमृत रहता है।" प्राण और अमृत एकत्रही रहता है, क्यों कि जब तक शरीरमें प्राण रहता है, तबतक मरणकी भीति नहीं होती। और सब ही जानते हैं कि प्राणियोंके शरीरोंमें प्राणही सबका प्रेरक है, इसीलिये उसके चाबुककी कल्पना उक्त मंत्रमें कही है। क्यों कि शरीररूपी रथके घोडे चलानेका कार्य यह ही चाबूक कर रहा है। दूसरे मंत्रमें कहा है कि "यह चाबूक शरीरस्थ वसु आदि देवताओंका सहायक है, यह प्रजाओंका प्राण ही है, अमृतका मध्य यह ही है। यह प्राण मर्त्योंमें तेज और चेतना उत्पन्न करता है, और सब प्राणियोंके बीचमें यह चलता है।" यह वर्णन उत्तम अलंकारसे युक्त है, परंतु स्पष्ट होनेके कारण हरएक इसका उपदेश जान सकता है।

अपनी स्वतंत्रता और पूर्णता।

अ० १९।६०

नसोः प्राणः ॥

श्रोत्रं चक्षुः प्राणोऽच्छिन्नो नो अस्त्वच्छिन्ना वयमायुषो वर्चसः ॥१॥

अ० १९।५८

अयुतोऽहमयुतो म आत्माऽयुतं मे चक्षुरयुतं मे श्रोत्र-मयुतो मे प्राणोऽयुतो मेऽपानोऽयुतो मे व्यानोऽयु-तोऽहं सर्वः ॥१॥

अ० १९।५१

"मेरे नाकमें प्राण स्थिरतासे रहे। मेरा कान, नेत्र और प्राण छिन्नभिन्न न होता हुआ मेरे शरीर में कार्य करे। मेरी

❀

आयु और तेज अविच्छिन्न अर्थात् दीर्घ होवे। मैं अपना आत्मा, चक्षु, श्रोत्र, प्राण, अपान, व्यान आदि सब मेरी शक्तियां पूर्ण स्वतंत्र और उन्नत होकर मेरे शरीरमें रहें॥"

आयु और प्राण अविच्छिन्न रूपसे अपने शरीरमें रहनेकी प्रबल इच्छा उक्त मंत्रमें है। सब इंद्रियां तथा सब अन्य शक्तियां अविच्छिन्न तथा पूर्ण उन्नत रूपसे अपने शरीरमें प्रकट होनेकी व्यवस्था हरएकको करनी चाहिये। उक्त मंत्रमें कई शब्द अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं —

अहं अयुतः।
अहं सर्वः अयुतः।

"मैं संपूर्ण रूपसे स्वतंत्र, दूसरे किसीकी सहायताकी अपेक्षा न करने योग्य समर्थ, किसी कष्टसे खिलबिली न मचने योग्य दृढ हूं।" यह भावना यदि मनमें आ जायगी तो मनुष्य की शक्ति कितनी बढ सकती है इसका विचार पाठक भी कर सकते हैं। मेरी इंद्रियां, मेरे प्राण तथा मेरे अन्य अवयव ऐसे दृढ और बलवान् होने चाहिए कि मुझे उनके कारण कभी क्लेश न हो सके, तथा किसी दूसरी शक्तिकी अपेक्षा न करता हुआ, मैं पूर्ण स्वतंत्रता के साथ आनंदसे अपने महान् महान् पुरुषार्थ कर सकूं। कोई यह न समझे कि यह केवल ख्यालही है। परंतु मैं यहां कह सकता हूं कि यदि मनुष्य निश्चय करेंगे, तो निःसन्देह वे अपने आपको इस प्रकार पूर्ण स्वतंत्र बना सकते हैं और उक्त शक्तियोंका पूर्ण विकास वे अपने अंदर कर सकते हैं। तथा—

प्राणकी मित्रता।

इहैव प्राणः सख्ये नो अस्तु तं त्वा परमेष्ठिन्
पर्यहमायुषा वर्चसा दधामि॥ अ. १३।१।१७

"यहां ही प्राण हमारा मित्र बने । हे परमेष्ठिन् ! अपने आयुष्य और तेजके साथ आपकी ही मैं धारणा करता हूं ।" प्राण के साथ मित्रता का तात्पर्य इतनाही है कि अपने शरीरमें प्राण बलिष्ठ होकर रहे । कभी अल्प आयुमें प्राण दूर न हो । अपने आयुष्यमें परमेष्ठी परमात्माकी ही सेवा और उपासना करना चाहिए । परमात्मा सर्वश्रेष्ठ गुणोंका केंद्र होनेसे परमात्मचिंतन-द्वारा सब ही श्रेष्ठ सद्गुणोंका ध्यान होता है और मनुष्य जिसका सदा ध्यान करता है उसके समान बन जाता है, इस नियमके अनुसार परमेश्वरके गुणोंके चिंतनसे मनुष्य भी श्रेष्ठ बनता है । यह उपासनाका और मानवी उन्नतिका संबंध है । इस प्रकार जो सत्पुरुष अपनी प्राणशक्तिको बढाता है, उसकी प्राणशक्ति कितनी विस्तृत होती है,इसकी कल्पना निम्न मंत्रोंसे हो सकती है । देखिए—

तस्य व्रात्यस्य ॥ सप्त प्राणाः सप्तापानाः सप्त व्यानाः ॥
योऽस्य प्रथमः प्राण ऊर्ध्वो नामायं सो अग्निः ॥
योऽस्य द्वितीयः प्राणः प्रौढो नामासौ स आदित्यः ॥
योऽस्य तृतीयः प्राणोऽभ्यूढो नामासौ स चंद्रमाः ॥
योऽस्य चतुर्थः प्राणो विभूर्नामायं स पवमानः ॥
योऽस्य पंचमः प्राणो योनिर्नाम ता इमा आपः ॥
योऽस्य षष्ठः प्राणः प्रियो नाम त इमे पशवः ॥
योऽस्य सप्तमः प्राणोऽपरिमितो नाम ता इमाः प्रजाः ॥

अ० १५।१५।१-९

"उस (व्रात्यस्य) संन्यासी सत्पुरुषके सात प्राण, सात अपान, सात व्यान हैं । उसके सातों प्राणोंके क्रमशः नाम ऊर्ध्व, प्रौढ, अभ्यूढ, विभू, योनि, प्रिय और अपरिमित हैं । और उन

के सात स्वरूप क्रमशः अग्नि, आदित्य, चंद्रमा, पवमान, आपः, पशु और प्रजा हैं । " इसी प्रकार इसके अपान और व्यानका वर्णन उक्त स्थानमें ही वेदने किया है । वहांही उसको पाठक देखें । विस्तार होनेके भयसे उस सबको यहां नहीं लिया है। मनुष्य अपनी शक्तिको इस प्रकार बढा सकता है। जो मनुष्य अपने सातों प्राणोंको अपरिमित रूपमें बढा सकता है, वह ही अपने आपको सब प्रजाजनोंके हितके कार्यमें अर्पण करता है। जो अपने प्राणको ऊर्ध्व अर्थात् उच्च करता है,वह अग्निके समान तेजस्वी होता है । इत्यादि प्रकार उक्त कथनका भाव समझना चाहिए । तथा—

समयकी अनुकूलता ।

काले मनः काले प्राणः काले नाम समाहितम् ॥
कालेन सर्वा नंदन्त्यागतेन प्रजा इमाः ॥ ७ ॥

अ० १९।५३

" कालकी अनुकूलतासे मन, प्राण और नाम रहता है । काल की अनुकूलतासे सब प्रजाओंको आनंद होता है । "

कालका नियम पालन करना चाहिए। पुरुषार्थके साथ कालकी अनुकूलता होनेसे उत्तम फल प्राप्त होता है । कालका धिक्कार नहीं करना चाहिए। जो अनुकूलता प्राप्त होती है उसका उपयोग अवश्य करना चाहिए। प्राणायामादि साधन करनेवाले को उचित है कि वह योग्य कालमें नियमपूर्वक अपना अभ्यास किया करे, तथा जिस समय जो करना योग्य है उसको अवश्य ही उस समय करना चाहिए। अब प्राणके संरक्षक ऋषियोंका वर्णन निम्न मंत्रमें देखिये—

प्राणरक्षक ऋषी।

ऋषी बोधप्रतीबोधावस्वप्नो यश्च जागृविः।
तौ ते प्राणस्य गोप्तारौ दिवा नक्तं च जागृताम् ॥
अ० ५।३०।१०

" बोध और प्रतिबोध अर्थात् स्फूर्ति और जागृति ये दो ऋषि हैं। ये दोनों तेरे प्राणकी रक्षा करते हुए दिनरात जागते रहें।"

प्रत्येक मनुष्यमें ये दो ऋषी हैं। " स्फूर्ति और जागृति " ये दो ऋषी हैं। एक उत्साहकी प्रेरणा करता है और दूसरा सावधान रहनेकी चेतना देता है। उत्साह और सावधानता ये दो सद्गुण जिस मनुष्यमें जितने होंगे, उतनी योग्यता उस मनुष्यकी हो सकती है। ये दो ऋषी प्राणके संरक्षणका कार्य करते हैं, और यदि ये दिनरात जागते रहेंगे तो मनुष्यको मृत्युकी बाधा नहीं हो सकती। जबतक मनुष्यका मन उत्साहसे परिपूर्ण रहेगा और जबतक सावधानताके साथ वह अपना व्यवहार करेगा, तबतक उसको मरणकी भीति नहीं होगी, यह साधारण नियम समझिये।

जो लोग असावधानताके साथ अपना दैनिक व्यवहार करते हैं, तथा जो सदा हीन दीन और दुर्बलताके ही विचार मनमें धारण करते हैं, उनको इस मंत्रका भाव ध्यानमें धरना उचित है। वेद कहता है कि मनमें उत्साहके विचार धारण करो और प्रतिक्षण सावधान रहो। जो मनुष्य अपने आपको वैदिक धर्मी समझता है, उसको उचित है कि वह अपने मनमें वेदके ही अनुकूल भाव धारण करे। वैदिक धर्मी मनुष्यको उचित नहीं कि वह वेदके विरुद्ध हीन और दीनताके विचार अपने मनमें

धारण करके मृत्युके वशमें होवे। वैदिक धर्मका विशेष उद्देश सर्वसाधारण जनताकी आयुष्यवृद्धि और आरोग्यवृद्धि करना है, इसीलिये स्थान स्थानके वैदिक सूक्तोंमें दीर्घायुत्वके अनेक उपदेश आते हैं। पाठक इन बातोंको ठीक प्रकार अपने मनमें धारण करें।

वृद्धताका धन।

प्र विशतं प्राणापानावनड्वाहाविव व्रजम्।
अयं जरिम्णः शेवधिररिष्ट इह वर्धताम् ॥ ५ ॥
आ ते प्राणं सुवामसि परा यक्ष्मं सुवामि ते।
आयुर्नो विश्वतो दधदयमग्निर्वरेण्यः ॥ ६ ॥

अ० ७।५३

"जिस प्रकार बैल अपने स्थानपर वापस आते हैं, उस प्रकार प्राण और अपान अपने स्थानपर आ जावें। वृद्धावस्था का जो खजाना है, वह यहां कम न होता हुआ बढता रहे। तेरे अंदर प्राणको प्रेरित करता हूं और बीमारीको दूर फेंकता हूं। यह श्रेष्ठ अग्नि हम सबको सब प्रकारके दीर्घ आयु देवे।"

बैल शामके समय वेगसे अपने स्थानपर आजाते हैं। उस प्रकारके बलयुक्त वेगसे प्राण और अपान अपने अपने स्थानमें रहें। जब प्राण और अपान बलवान् बनकर अपना अपना कार्य करेंगे, तब मृत्युका भय नहीं हो सकता और मनुष्य दीर्घ आयुष्यरूपी धन प्राप्त कर सकता है। सब धनोंमें आयुष्यरूपी धन ही सबसे श्रेष्ठ है, क्यों कि सब अन्य धनोंका उपयोग इसके होनेपर ही हो सकता है। उक्त मंत्रमें—

जरिम्णः शेवधिः इह वर्धतां ॥ अ० ७।५३।५

ये शब्द मनन करने योग्य हैं। "वृद्ध आयुका खजाना यहां

बढता रहे।" अर्थात् इस लोकमें आयु बढती रहे। ये शब्द स्पष्टतासे बता रहे हैं कि आयु निश्चित नहीं, प्रत्युत बढनेवाली है। जो मनुष्य अपनी आयु बढाना चाहेगा वह उस प्रकारके आयुष्यवर्धक सुनियमोंका पालन करके आयु बढा सकता है। इस प्रकार वेदका उपदेश अत्यंत स्पष्ट है। परंतु कई वैदिक धर्मी समझते ही हैं कि आयु निश्चित है और घट बढ नहीं सकती। जिन बातोंमें वेदका कथन स्पष्ट है उन बातोंमें कमसे कम भिन्न विचार वैदिक धर्मियोंको धारण करना उचित नहीं है।

बोध और प्रतिबोध।

पूर्व स्थानमें बोध और प्रतिबोध ये दो ऋषि हैं, ऐसा कहा ही है। वही भाव थोडेसे फरकसे निम्न मंत्रमें आया है, देखिये-

बोधश्च त्वा प्रतिबोधश्च रक्षतामस्वप्नश्च त्वाऽनवद्राणश्च रक्षताम्। गोपायंश्च त्वा जागृविश्च रक्षताम्॥ अ० ८।१।१३

"उत्साह और सावधानता तेरा रक्षण करें। स्फूर्ति और जागृति तेरा संरक्षण करें। रक्षक और जागृत तेरा पालन करें।"

इस मंत्रमें संरक्षक गुणोंका वर्णन है। उत्साह, सावधानता, स्फूर्ति, जागृति, रक्षण और खबरदारी ये गुण संरक्षण करनेवाले हैं। इनके विरुद्ध गुण घातक हैं। इसलिये अपनी अभिवृद्धिकी इच्छा करनेवालेको उचित है कि वह उक्त गुणोंकी वृद्धि अपने में करे। इस मंत्रके साथ पूर्व मंत्र, जिसमें दो ऋषियोंका वर्णन है, तुलना करके देखें। अब निम्न मंत्र देखिये-

उन्नति ही तेरा मार्ग है।

उद्यानं ते पुरुष नावयानं जीवातुं ते दक्षतातिं कृणोमि।
आ हि रोहेममममृतं सुखं रथमथ जिर्विर्विदथमा वदासि॥
अ० ८।१।६

" हे मनुष्य ! तेरी गति (उत् यानं) उन्नतिकी ओर ही होनी चाहिये । कभी भी (अव यानं न) अवनतिकी ओर होनी नहीं चाहिये । तेरे दीर्घ आयुष्यके लिये मैं बलका विस्तार करता हूं । इस सुखमय शरीररूपी अमृतमय रथपर (आरोह) चढो । और जब तुम दीर्घ आयुसे युक्त हो जाओगे तब (विदथं) सभाओंमें (आवदासि) संभाषण करोगे । "

अपना अभ्युदय करनेका यत्न करना चाहिए,कभी ऐसा कर्म करना नहीं चाहिए कि जिससे अवनति होनेकी संभावना हो सके । जीवनके लिये प्राणका बल फैलाना चाहिए । प्राणका बल बढानेसे दीर्घ आयुष्य प्राप्त हो सकता है । यह शरीररूपी उत्तम रथ है जिसको इंद्रियरूपी दस घोडे जोते हैं । इस रथमें प्राणरूपी अमृत है, इस लिये इसको सुखमय रथ कहा जाता है। इस सर्वोत्तम रथपर आरूढ हो जाओ और अपनी उन्नतिके मार्गमें आगे बडो । जब तुम बल और दीर्घ आयु प्राप्त करोगे तब तुमको बडी बडी सभाओंमें अवश्यही संभाषण करना होगा, क्यों कि दूसरोंका सुधार करनेके लिये तुमको प्रयत्न करना चाहिए । जीवनार्थ युद्धमें सब जनताको उत्तम मार्ग बतानेका कार्य तुम्हाराही है । तुमको स्वार्थी बनाना नहीं चाहिए, प्रत्युत जनताकी उन्नतिमें अपनी उन्नति समझनी चाहिए । इस मंत्रसे पता लगता है कि प्राणायामादि साधनों द्वारा दीर्घ आयु, उत्तम आरोग्य, अद्वितीय बल, सूक्ष्म बुद्धि और विशाल मन प्राप्त करनेके पश्चात् मनुष्यको अपना जीवन सार्वजनिक हितका साधन करनेमें लगाना चाहिए । समाजसे अलग होकर अपनी ही शांति प्राप्त करनेमात्रसे मनुष्य कृतकार्य नहीं हो सकता, परंतु जब एक " नर " अपने आपको उन्नत करनेके पश्चात् " वैश्वा-नर " के लिये आत्मसमर्पण करता है,तब ही वह उच्चतम अवस्थाको

प्राप्त कर सकता है । यही सर्व-मेध-यज्ञ है । अस्तु । इस प्रकार उक्त मंत्रने योगी मनुष्यके सन्मुख अंतिम उच्च आदर्श रख दिया है । आशा है कि,सब श्रेष्ठ मनुष्य इस वैदिकआर्शको अपने सन्मुख रखकर अपना जीवन इसके अनुसार ढालनेका यत्न करेंगे । अब अन्य बातोंका विचार यहां करना है। योगी जनोंका अधिकार कहांतक पहुंचता है, इसका पता निम्न मंत्रोंसे लग सकता है—

यमके दूत ।

कृणोमि ते प्राणापानौ जरां मृत्युं दीर्घमायुः स्वस्ति ॥
वैवस्वतेन प्रहितान् यमदूतांश्चरतोपसेधामि सर्वान् ॥ ११॥
आरादरातिं निर्ऋतिं परो ग्राहिं क्रव्यादः पिशाचान् ॥
रक्षो यत्सर्वं दुर्भूतं तत्तम इवाप हन्मसि ॥ १२ ॥
अग्नेष्टे प्राणममृतादायुष्मतो वन्वे जातवेदसः ॥
यथा न रिष्या अमृतः सजूरसस्तत् ते कृणोमि तदु ते
समृध्यताम् ॥ १३ ॥ अ. ८।२

" मैं तेरे अंदर प्राण और अपान का बल, दीर्घ आयु, (स्वस्ति) स्वास्थ्य आदि सब अच्छे भाव, वृद्धावस्थाके पश्चात् योग्य समयमें मृत्यु आदि स्थापन करता हूं। वैवस्वत यमके द्वारा भेजे हुए यमदूतोंको मैं ढूंढ ढूंढ कर दूर करता हूं॥ (अरातिं) अदावत, (निर्ऋतिं) नियमविरुद्ध व्यवहार,(ग्राहिं) दूरसे चलनेवाले रोग, (क्रव्यादः) मांसको क्षीण करनेवाली बीमारी, (पिशाचान्) रक्तको निर्बल करनेवाले रक्तके कृमि, (रक्षः=क्षरः) सब क्षयके कारण, (सर्वं दुर्भूतं) सब बुरा व्यवहार आदि जो कुछ विनाशक है उस सबको अंधकारके समान मैं दूर करता हूं॥ तेरे लिये मैं तेजस्वी, अमर और आयुष्मान्

जातवेदसे प्राण प्राप्त करता हूं। जिस प्रकार तेरा अकालमृत्यु न होगा, तू अमर अर्थात् दीर्घजीवी बनोगे, (सजूः) मित्रभावसे संतुष्ट रहोगे और तुम्हें कष्ट न होगा, उस प्रकारकी समृद्धि तेरे लिये मैं अर्पण करता हूं॥"

इन मंत्रोंमें प्राण साधन करके जो विलक्षण सिद्धि प्राप्त होती है उसका उत्तम वर्णन है। प्राणका बल प्राप्त करनेसे सब प्रकार का स्वास्थ्य, दीर्घ आयु, बल, तथा योग्य कालमें मृत्यु हो सकता है। परंतु प्राणका बल न होनेकी अवस्थामें नाना प्रकार के रोग, अल्प आयु, अशक्तता और अकाल मृत्यु होते हैं। इससे प्राणायामादि द्वारा प्राणकी शक्ति बढानेकी आवश्यकता स्पष्ट सिद्ध होती है। जो विद्वान् आयुको परिमित और निश्चित मानते हैं वे कहते हैं कि, यमके दूत सब जगत्में संचार करते हैं, वे आयुकी समाप्तिके समय मनुष्यके प्राणोंका हरण करते हैं। इसलिये आयु बढ नहीं सकती। इस अवैदिक मत का खंडन करते हुए वेद कहता है कि जो यमदूत इस जगत्में संचार करते होंगे, उनको भी प्राणके अनुष्ठानसे दूर किया जा सकता है। इसमें मनुष्य पराधीन नहीं है। अनुष्ठानकी रीति से प्राणका बल बढाइए, तो उसी क्षण यमदूत आपसे दूर हो सकते हैं। प्राणोपासना करनेवालोंके ऊपर यमदूत अपना प्रभाव नहीं डाल सकते। इस प्रकारका अभयदान वेद दे रहा है, इसकी ओर हरएक वैदिक धर्मीका ध्यान अवश्य जाना चाहिए। इस विचार को धारण करके निर्भय बनकर प्राणायामद्वारा अपनी आयु हरएकको दीर्घ बनानी चाहिए तथा अन्य प्रकारका स्वास्थ्य भी प्राप्त करना चाहिए। प्राणायामके अनुष्ठान से मनुष्य इतना बल प्राप्त कर सकता है कि जिससे वह यमदूतों को भी दूर भगा सकता है। इतना सामर्थ्य प्राप्त होता है इस

लिये ही सब श्रेष्ठ पुरुष प्राणायामका महत्त्व वर्णन करते हैं।

प्राणायामसे सब ही प्रकारके व्याधी, दोष और रोगोंके मूल कारण दूर हो सकते हैं। दुष्ट भाव, बुरा आचार, विधिनियमोंके विरुद्ध व्यवहार आदि सब दोष इस अभ्याससे दूर होते हैं। सब प्रकारके रोगोंके बीज शरीरसे हट जाते हैं। जिस प्रकार सूर्य अपने किरणों द्वारा अंधकारका निर्मूलन करता है, उस प्रकार योगी अपनी प्राणशक्तिके प्रभावसे सब रोगबीजोंको दूर कर सकता है।

जो सब बने हुए पदार्थोंको यथावत् जानता है, वह आत्मा "जात-वेद अग्नि" है। वह आत्मा अमृतरूप तथा आयुष्मान् है। इसलिये वह ही सबको अमर और आयुष्मान् कर सकता है। जो उसके साथ अपने आत्माको योगसाधनद्वारा संयुक्त कर सकते हैं, वे अपने आपको दीर्घ आयुसे युक्त और अमरत्व से पूर्ण बना सकते हैं। इस प्रकारके साधन संपन्न योगी अकाल मृत्युसे मरते नहीं, अमर बनते हैं, सदा संतुष्ट और प्रेमपूर्ण बनते हैं, इसलिये सब प्रकारकी समृद्धिसे युक्त होते हैं। यही सच्ची समृद्धि है। मनुष्यका अधिकार है कि वह इस समृद्धिको प्राप्त करे।

अथर्वाका सिर।

चित्तवृत्तियोंका निरोध करना और मनकी सब वृत्तियोंको स्वाधीन रखकर उनको अच्छेही कर्ममें लगाना योग कहलाता है। इस प्रकारका पुरुषार्थ जो करता है उसको योगी कहते हैं। योगीके अंदर चंचलता नहीं रहती और दृढ स्थिरता मनोवृत्तियोंमें शोभा बढाने लगती है। इस प्रकारके योगीका नाम "अ-थर्वा" होता है। 'अ-चंचल' यह अथर्वा शब्दका भाव है। एकाग्रताकी

सिद्धि उसको प्राप्त होती है। इस अथर्वाका जो वेद है वह अथर्ववेद है। अथर्ववेद सर्व सामान्य मनुष्योंके लिये नहीं है। योगसाधनका इसमें मुख्य भाग होनेसे तथा सिद्ध अवस्थाकी बातें इसमें होनेसे यह अथर्ववेद योगियोंका वेद है। इसमें इसी कारण प्राणायामविषयक उपदेश सब अन्य वेदोंकी अपेक्षा अधिक है। इस वेदमें अथर्वाके सिरका वर्णन निम्न प्रकार किया है -

मूर्धानमस्य संसीव्याथर्वा हृदयं च यत् ॥
मस्तिष्कादूर्ध्वः प्रैरयत्पवमानोऽधि शीर्षतः ॥२६॥
तद्वा अथर्वणः शिरो देवकोशः समुब्जितः ॥
तत्प्राणो अभिरक्षति शिरो अन्नमथो मनः ॥२७॥
यो वै तां ब्रह्मणो वेदामृतेनावृतां पुरम् ॥
तस्मै ब्रह्म च ब्राह्माश्च चक्षुः प्राणं प्रजां ददुः ॥२९॥
न वै तं चक्षुर्जहाति न प्राणो जरसः पुरा ॥
पुरं यो ब्रह्मणो वेद यस्याः पुरुष उच्यते ॥३०॥
अष्टचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या ॥
तस्यां हिरण्मयः कोशः स्वर्गो ज्योतिषावृतः ॥३१॥
तस्मिन् हिरण्मये कोशे त्र्यरे त्रिप्रतिष्ठिते ॥
तस्मिन् यद्यक्षमात्मन्वत् तद् वै ब्रह्मविदो विदुः॥३२॥
प्रभ्राजमानां हरिणीं यशसा सं परिवृताम् ॥
पुरं हिरण्मयीं ब्रह्मा प्रविवेशापराजिताम् ॥३३॥

अ. १०।२

"(अ-थर्वा) स्थिरचित्त योगी अपने (मूर्धानं) मस्तिष्क के साथ हृदयको सीता है, और सिरके मस्तिष्कके ऊपर अपने (पवमानः) प्राणको भेज देता है॥ वह ही अथर्वाका सिर है कि जिसको देवोंका कोश कहा जाता है॥ उसका रक्षण प्राण, अन्न

और मन करता है॥ अमृतसे परिपूर्ण इस ब्रह्मकी नगरीको जो जानता है, उसको ब्रह्म और इतर देव चक्षु प्राण और प्रजा देते हैं॥ वृद्धावस्थाके पूर्व चक्षु और प्राण उसको छोडते नहीं। जो इस ब्रह्मपुरीको जानता है, और जिसमे रहनेके कारण आत्माको पुरुष कहते हैं॥ आठ चक्र और नौ द्वारोंसे युक्त यह देवोंकी अयोध्या नगरी है, इसमें तेजस्वी कोश है वह ही दैदीप्यमान स्वर्ग है। तीन आरोंसे युक्त और तीन स्थानोंपर रहे हुए उस तेजस्वी कोशमें जो पूज्य आत्मा है, उसको ब्रह्मज्ञानी लोक जानते हैं। इस दैदीप्यमान मनोहर यशस्वी और अपराजित नगरीमें ब्रह्मा प्रवेश करता है।"

योगसाधन करनेवालोंके लिये यह उपदेश अमूल्य है। इसमें सबसे पहिली बात यह कही है कि हृदयका धर्म भक्ति है और मस्तिष्कका धर्म विचार है। भक्ति और विचार का विरोध नहीं होना चाहिये। दोनों एक ही कार्य में सम अधिकारसे प्रवृत्त होने चाहिये। जहां ये दोनों केंद्र विभक्त होते हैं उसमें दोष उत्पन्न होते हैं। धर्म में विशेषतः मस्तिष्क की तर्कना और हृदयकी भक्तिको समान स्थान मिलना चाहिए। जिस धर्ममें इनको समान स्थान नहीं होता, उस धर्म में बडे दोष होते हैं। शिक्षाविभागमें भी मस्तिष्क और हृदयका सम विकास होने योग्य शिक्षा होनी चाहिए। जिस शिक्षामें केवल मस्तिष्ककी तर्कशक्ति बढती है, उस शिक्षाप्रणालीसे नास्तिकता उत्पन्न होती है और जिससे केवल भक्ति बढती है, उस प्रणालीसे अंधविश्वास बढता है। इसलिये तर्क और भक्ति का समविकास होनेसे दोनों दोष दूर होते हैं और सब प्रकार की उन्नति होती है। योगसाधन करनेवाले को उचित है कि वह अपने में मस्तक की तर्कशक्ति और हृदय की भक्ति समप्रमाणमें विकसित करे।

यही भाव "मूर्धा और हृदय को सीने" के उपदेशमें है। दोनों को सीकर एक करना चाहिए और दोनों को मिलाकर आत्मोन्नतिके कार्य में समर्पित करना चाहिए।

ब्रह्मलोककी प्राप्ति ।

"मस्तिष्क के ऊपर के स्थानमें प्राणको प्रेरित करना" यह दूसरा उपदेश उक्त मंत्रों में है। मस्तिष्कमें सहस्रार चक्र है और इसके नीचे पृष्ठवंशके साथ कई चक्र हैं। प्राणायामद्वारा नीचेसे एक एक चक्रमें प्राण भरनेकी क्रिया साध्य होती है। और सबसे अंतमें इस मस्तिष्कके सहस्रार चक्रमें प्राण भेजा जाता है, इस अवस्थासे पूर्व पृष्ठवंशके नाडियोंमें प्राण का उत्तम संचार होता है। तत्पश्चात् मिस्तष्कके सहस्रार चक्र में प्राण पहुंचता है और ब्रह्मरंध्रतक प्राणकी गति होती है। यह प्राणकी सर्वोत्तम गति है। यही ब्रह्मलोक होनेसे तथा इस स्थानमें प्राणके साथ आत्माकी गति होनेसे, उस अवस्थामें मुमुक्षुको ब्रह्मलोकप्राप्ति होती है। इसलिए इस अवस्थाको सबसे श्रेष्ठ अवस्था कहते हैं। यह सबसे श्रेष्ठ अवस्था प्राणायामके नियमपूर्वक अभ्याससे प्राप्त होती है, इस कारण यह योगियोंको प्राप्त होनेवाली अवस्था है।

देवोंका कोश ।

अ-थर्वा अर्थात् योगीका उक्त प्रकारका सिर सचमुच देवोंका खजाना है। इस प्रकारके अथर्वाके सिरमें सब दिव्य भावनाएं रहतीं हैं। सब दिव्य श्रेष्ठ दैवी शक्तियोंका निवास उसके शरीरमें होता है, इसलिये उसका देह देवताओंका सच्चा मंदिर है। इस देवोंके मंदिरकी रक्षा करनेवाले जो वीर हैं उनके नाम प्राण, मन और अन्न हैं। बलवान् प्राण सब रोगबीजों और शारीरिक दोषोंको हटाता है। श्रेष्ठ सद्गुणों और सत्यनिष्ठ मन

अपने सुविचारों द्वारा इसको सुरक्षित रखता है । मनकी प्रबल इच्छाशक्तिद्वारा सब ही दोष दूर हो सकते हैं और आदर्श अवस्था प्राप्त हो सकती है । सात्त्विक अन्नके सेवन करनेसे शरीर निर्दोष बनता है, मन भी सात्त्विक बनता है और प्राणका बलभी बढता है । इस प्रकार ये तीन वीर - "प्राण, मन और अन्न "- परस्परोंका संवर्धन करते हुए, सब मिलकर योगीकी सहायता करते हैं । यहही प्राणायामका यश है ।

ब्रह्मकी नगरी ।

ब्रह्मकी नगरी हृदयमें है और उसमें अमृत है। यह अमृत देव प्राशन करते हैं और पुष्ट होते हैं। अर्थात् हृदयस्थानीय रुधिरही सब इंद्रियोंमें जाकर वहां का आरोग्य स्थिर रहता है । इस अमृतपूर्ण ब्रह्मकी नगरीको जो ठीक प्रकार जानता है, इस पुरीके सब गुणधर्मोंसे जो परिचित होता है, अपने इस हृदयकी शक्तियोंको जो जानता है, उसको ब्रह्म और ब्रह्मकी शक्तियां चक्षु, प्राण और प्रजा देतीं हैं । चक्षु शब्दसे सब इंद्रिय और अवयवोंकी सूचना होती है, प्रजा शब्द सुप्रजा का बोध करता है और प्राण शब्द से सामर्थ्ययुक्त जीवन का ज्ञान होता है। तात्पर्य इस अपने हृदय की शक्तियोंका उत्तम ज्ञान प्राप्त करनेसे उक्त प्रकार के लाभ हो सकते हैं। हृदयको तथा अपने आंतरिक इंद्रियों और अवयवोंको जानना, प्राणायामसे जो चित्तकी एकाग्रता होती है, उससे साध्य होता है। जब प्राणायामसे चित्तकी एकाग्रता होती है तब कई अज्ञात शक्तियों का विज्ञान होता है, उसी अवस्थामें आंतरिक उपकरणोंका विज्ञान होता है, इसी रीतिसे हृदयादि अंतरंगोंका पूर्ण ज्ञान होनेके पश्चात् वहां अपने आत्माकी शक्ति कैसी अद्भुत रीतिसे

कार्य कर रही है, इसका साक्षात्कार होता है। इस प्रकार अपने आत्मांकी शक्ति विदित होते ही उक्त फल प्राप्त होता है। सुप्रजा निर्माण करनेकी शक्ति, दीर्घ आयु और बलवान् इंद्रिय ये तीन फल अपने हृदयका तथा वहांकी आत्मशक्तिका ज्ञान प्राप्त करनेवालेको होते हैं।

जो पुरुष ब्रह्मज्ञानी बनता है, वह अकालमृत्यु से नहीं मरता, पूर्ण आयुष्यकी समाप्तिके पश्चात् स्वकीय इच्छासे वह मरता है। आयुष्यकी समाप्ति तक उसके संपूर्ण इंद्रिय, अवयव और अंग बलवान् और कार्यक्षम रहते हैं। यह ब्रह्मज्ञानका फल है। कई यहां शंका करेंगे कि ब्रह्मज्ञान का यह फल कैसा प्राप्त होता है ? इस शंकाके उत्तरमें निवेदन है कि ब्रह्मज्ञानसे आत्मिक शांति होती है और उस कारण उसको उक्त फल प्राप्त हो सकते हैं। तथा जो ब्रह्मज्ञानी होता है उसका आचार विचारशक्ति क्षीण करनेवाला न होनेके कारण उसकी शक्ति कभी क्षीण होती ही नहीं, प्रत्युत उसकी शक्ति विकसित होती है। जिसकी शक्तिकी अभिवृद्धि होती है, उसको उक्त बातें प्राप्त करनी शक्य ही है।

अयोध्या नगरी।

आठ चक्र और नौ द्वारोंसे युक्त यह देवताओंकी नगरी है, इसका नाम "अयोध्या" है। जिसमें देवभावना और आसुरी भावनाओंका संग्राम नहीं होता, अर्थात् जहां दैवी वृत्ति ही सदा शांतिके साथ निवास करती है। इसलिये उसका नाम "अ-योध्या" नगरी है। जब तक यह नगरी देवोंके आधीन होती है तब तक उसमें शांतिका रामराज्य हो जाता है। इंद्रियों के नौ द्वार हैं और इसमें पृष्ठवंशमें मूलधार आदि आठ चक्र हैं।

इस नगरीमें हृदयस्थानमें प्रकाशमय स्वर्ग है। वह ही प्राणायामादि साधनोंके द्वारा प्राप्तव्य स्थान है। प्राप्तव्यका अर्थ स्वकीय इच्छासे प्राप्तव्य है, अन्यथा वह स्थान सब ही प्राणिमात्रके पास है ही, परंतु बहुत ही थोडे हैं कि जो अपनी इच्छासे उसमें प्रवेश कर सकते हैं। आत्मशक्तिका प्रभाव जानते हुए उस स्थानको जानना और ज्ञानके साथ उसमें निवास करना योग-साधनसे साध्य है।

अयोध्याका राम।

इस नगरीमें जो पूजनीय देव है वह ही आत्माराम है, उसको ब्रह्मज्ञानी लोक ही जानते हैं, अन्योंको उसका पता नहीं लग सकता।

इस यशस्वी नगरीमें विजयी ब्रह्मा प्रवेश करता है, जीवात्मा जब आसुरी भावनाओंपर विजय प्राप्त करता है, तब वह अपनी राजधानीमें विजयोत्सव करता हुआ प्रवेश करता है। यह राजधानी अयोध्या नगरी यशसे परिपूर्ण है, दुःखोंका हरण करनेवाली है और तेजसे प्रकाशित है। इसका पराजय आसुरी भावनाओंके द्वारा कभी हो ही नहीं सकता। इसलिये इसका नाम ही "अपराजित अयोध्या" है। अपने हृदयकी इस शक्तिको जानना चाहिए। 'मैं अपराजित हूं। दुष्ट भावोंसे मैं कभी पराजित नहीं हो सकता। मैं सदा विजयी ही रहूंगा। मेरा नामही "विजय" है।' इत्यादि भाव उपासकको अपने अंदर धारण करने चाहिए। 'मैं हीन दीन दुर्बल और अधम हूँ' इस प्रकारके भाव कदापि मनमें धारण नहीं करने चाहिए। ये अवैदिक भाव हैं। इस मंत्रमें आत्माका विजयी स्वरूप बताया है। आशा है कि वैदिक धर्मी सज्जन इस भावको धारण करेंगे।

❀

अपने आत्माकाही यह वर्णन है। आत्मा किस प्रकारके भावसे पराजित होता है और किस भावनाके धारण करने से विजयी होता है, इसका सूक्ष्म वर्णन इसमें दिया है। आत्माही ब्रह्मा है। वह हृदयकमलमें निवास करता है, हंस अर्थात् प्राण उसका वाहन है, यही देवोंकी पुरी अमरावती है, यही सब कुछ है। पाठक प्रयत्न करके अपने अंदर इस शक्तिका अनुभव करें और अपना विजय संपादन करें।

अब चारों वेदोंमेंसे अनेक मंत्रोंद्वारा जो जो उपदेश ऊपर दिया है उसका सारांश नीचे देता हूं, जिसको पढनेसे पूर्वोक्त सब कथनका भाव हृदयमें प्रकाशित हो सकेगा—

(१) आंतरिक प्राणका बाह्य वायुके साथ नित्य संबंध है।

(२) जितना प्राण होता है उतनी ही आयु होती है। इसलिये प्राणशक्तिकी वृद्धि करनेसे आयुष्यकी वृद्धि हो सकती है।

(३) प्राणरक्षणके नियमोंके अनुकूल आचरण करनेसे न केवल प्राणका बल बढता है, प्रत्युत चक्षु आदि सबही इंद्रियों, अवयवों और अंगोंकी शक्ति बढती है, और उत्तम आरोग्य प्राप्त हो सकता है।

(४) प्राणायामके साथ मनमें शुभ विचारोंकी धारणा करनेसे बडा लाभ होता है।

(५) सूर्यप्रकाशका सेवन तथा भोजनमें घीका सेवन करनेसे प्राणायामकी शीघ्र सिद्धि होती है।

(६) प्राणशक्तिका विकास करना हरएक का कर्तव्य है। क्यों कि आत्माकी शक्तिके साथ प्रेरित प्राण शरीरके अंगमें जाकर वहांके स्वास्थ्यकी रक्षा और बलकी वृद्धि करता है।

(७) एकही प्राणके प्राण अपान व्यान उदान और समान ये भेद हैं; तथा अन्य उपप्राण भी उसीके प्रभेद हैं।

(८) संतोषवृत्ति और पवित्रतासे प्राणका सामर्थ्य बढता है।

(९) प्राणका वीर्यके साथ संबंध है। वीर्यरक्षणसे प्राणशक्तिकी वृद्धि होती है और प्राणायामसे वीर्यकी स्थिरता होती है, इस प्रकार इनका परस्परसंबंध है।

(१०) परमेश्वर की उपासना और संगीतका अभ्यास इन दोनोंसे प्राणका बल बढ जाता है।

(११) प्राणशक्तिकी रक्षा और अभिवृद्धिके लिये सब अन्य इंद्रियोंके सुखोंको त्यागना चाहिए; अर्थात् अन्य इंद्रियोंके सुख प्राप्त करनेके लिये प्राणकी हानि करना नहीं चाहिए।

(१२) सब शक्तियोंमें प्राणशक्तिही मुख्य और प्रमुख शक्ति है।

(१३) सत्कर्मके साथ प्राणका पोषण करना चाहिए।

(१४) वाचा, मन और कर्ममें शुद्धता और पवित्रता रखना चाहिए। इससे बल बढता है।

(१५) सोनेके समय अपनी सब इंद्रियशक्तियां किस प्रकार आत्मामें लीन होती हैं, और उठनेके समय पुनः किस प्रकार व्यक्त रूपमें कार्य करने लगतीं हैं, इसका विचार करना और इसमें प्राणके कार्यका अनुभव लेना चाहिए। इस अभ्याससे आत्माकी विलक्षण शक्ति जानी जाती है।

(१६) संपूर्ण रोगबीजों और शारीरिक दोषोंको प्राण ही दूर करता है। जबतक प्राण है, तबतक शरीरमें अमृत है।

(१७) भोजनके साथ, प्राणशक्ति आयुष्य आरोग्य आदिका संबंध है। इसलिये ऐसा उत्तम सात्त्विक भोजन करना चाहिए कि जो आयुष्य आरोग्य आदिकी वृद्धि कर सके।

(१८) सहस्रों सूक्ष्म रूपोंसे शरीरमें प्राण कार्य करता है।

(१९) प्राणसंवर्धनके नियमोंके विरुद्ध व्यवहार करनेसे सब शक्ति क्षीण होकर अकालमृत्यु आता है । इसलिये इस प्रकार की नियमविरुद्ध आचरण करनेकी प्रवृत्तिको रोकना चाहिये ।

(२०) अग्नि, वायु, रवि आदि बाह्य देवताएं अपने शरीरमें वाचा, प्राण, चक्षु आदि रूपसे रही हैं। इस प्रकार अपना शरीर देवताओंका मंदिर है और मैं उन सब देवताओंका अधिष्ठाता हूं । यह भावना मनमें स्थिर करना चाहिये और अपने आपको उक्त भावनारूप समझना चाहिये ।

(२१) अपने आपको अपराजित, विजयी और शक्तिका केंद्र मानना उचित है ।

(२२) प्राण ही रुद्र है । रुद्रवाचक सब शब्द प्राणवाचक हैं ।

(२३) प्राणके आधारसे ही सब विश्व चल रहा है । प्राणियों के अंदर यह बडी विलक्षण शक्ति है ।

(२४) मैं पुरुषार्थसे अवश्यही अपनी सब शक्तियोंका विकास करूंगा, ऐसा दृढ निश्चय करना योग्य है ।

(२५) अपने आपको कभी हीन दीन दुर्बल नहीं समझना, परंतु अपने प्रभावका गौरव ही सदा देखना चाहिए ।

(२६) जगत् में ऐसी कोई शक्ति नहीं है कि जो मुझे कष्ट दे सकेगी । मैं सब कष्टोंको दूर करनेका सामर्थ्य रखता हूं । यह भाव मनमें रखना चाहिए ।

(२७) सर्वशक्तिमान् परमेश्वर मेरा मित्र है, इस बातपर पूर्ण विश्वास रखना, तथा उसको अपना पिता, माता, भाई आदि समझना । उसमें और मेरेमें स्थान काल आदिका भेद नहीं है ।

(२८) योग्य कालमें योग्य कार्य करना । कालकी अनुकूलता प्राप्त होनेपर उसको दूर नहीं करना । आजका कर्तव्य कलके लिये नहीं रखना ।

(२९) स्फूर्ति और जागृति धारण करनेसे उन्नति होती है ।

(३०) दीर्घ आयु ही बडा धन है, उसको और भी बढाना चाहिए । निर्दोष बननेसे उस धनकी वृद्धि होती है ।

(३१) उत्साह, सावधानता, स्फूर्ति, जागृति, स्वसंरक्षणकी भावना और योजनासे उन्नतिका साधन किया जा सकता है ।

(३२) सदा ऊपर उठनेके लिये प्रयत्न होना चाहिए । ऐसा कोई कार्य करना नहीं चाहिए कि जिससे नीचे गिरनेकी संभावना हो सके ।

(३३) इस अमृतमय शरीरमें आकर व्यक्तिकी उन्नति और सब जनताकी उन्नति करनेके लिये प्रयत्न करना चाहिए। जीवन का यही उद्देश्य है ।

(३४) संपूर्ण अनिष्टोंके साथ युद्ध करके अपना विजय संपादन करना चाहिए ।

(३५) हृदयकी भक्ति और मस्तिष्क का तर्क इन दोनों शक्तियोंको एक ही सत्कार्य में लगाना चाहिए, तथा इन दोनों का सम विकास करना चाहिए ।

(३६) योगीका सिर सचमुच देवोंका वसतिस्थान है ।

(३७) अपने ही हृदयमें ब्रह्मनगरी है, वह ही स्वर्ग और वह ही अमरावति है । यही देवोंकी अयोध्या है । ब्रह्मज्ञानी इसको ठीक प्रकार जानते हैं ।

(३८) जो आत्मशक्ति का विकास करता है, वह ही स्वकीय गौरव के साथ इस अपनी राजधानीमें प्रवेश करता है ।

(३९) प्राणको अपने स्वाधीन करके मस्तिष्कके ऊपर भेजना चाहिए । जहां विचारों की गति नहीं है, वहां पहुंचना चाहिए। वह ही आत्माका स्थान है ।

(४०) निश्चय के साथ पुरुषार्थ-प्रयत्नसे, उन्नतिके पथपर चलनेवाला योगी अपनी सब प्रकारसे उन्नति कर सकता है ।

इस प्रकार वेदमंत्रों का आशय है। पाठक इसका वारंवार विचार करें और अपनी उन्नतिके लिये उपयोगी बोध ले लें। तथा प्राप्त बोधके अनुसार आचरण करके अपने और जनताके अभ्युदय और निश्रेयस् प्राप्तिके साधनमें सदा तत्पर रहें।

इस लेखमें थोडेसे वेदमंत्र दिये हैं जिनमें प्राणविषयक उपदेश विशेष रीतिसे स्पष्ट है। परंतु इसके अतिरिक्त अन्य देवताओंके सूक्तोंमें गुप्त रीतिसे जो प्राणविद्याका वर्णन है उसकी भी खोज होनी चाहिए। आशा है कि पाठक स्वयं प्राणविद्या का अभ्यास करके उक्त खोज करनेके पवित्र कार्यमें अपने आपको समर्पित करेंगे ।

स्वयं अनुभव लेनेके विना उक्त प्रकारकी खोज नहीं हो सकती इसलिए प्रथम प्राणायामका साधन स्वयं करना चाहिए। जो सज्जन प्राणायामका साधन स्वयं करेंगे और उच्च भूमिकाओंमें जाकर वहां का प्रत्यक्ष अनुभव करेंगे, उनको ही वैदिक संकेतों का उत्तम ज्ञान होना संभव है। इसलिये पाठकोंसे प्रार्थना है कि वे प्रथम अनुष्ठानद्वारा स्वयं अनुभव लेनेका यत्न करें, और पश्चात् वैदिक प्राणविद्याकी खोज करके पीछेसे आनेवाले सज्जनोंका मार्ग सुगम करें। हरएकके थोडे थोडे प्रयत्नसे महान् कार्य सिद्ध हो सकता है। आशा है कि पाठक उत्साहके साथ अपूर्व प्रयत्न करेंगे।

उपनिषदोंमें प्राण-विद्या ।

वेदमंत्रोंमें जो अध्यात्मविद्या है, वह ही उपनिषदोंमें बतलाई है। अध्यात्मविद्याके अनेक अंगोंमें प्राणविद्या नामक एक मुख्य

अंग है। वह जैसा वेदके मंत्रोंमें है वैसा उपनिषदोंके मंत्रोंमें भी है। इससे पूर्व वेदमंत्रोंकी प्राणविद्या सारांश रूपसे बताई है, अब उपनिषदोंकी प्राणविद्या देखना है।

प्राणकी श्रेष्ठता।

प्राण सब शक्तियोंमें सबसे श्रेष्ठ शक्ति है, इस विषयमें निम्न वचन देखिये—

प्राणो ब्रह्मेति व्यजानात्। प्राणाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि
जायंते। प्राणेन जातानि जीवंति। प्राणं प्रयंत्यभि सं विशंतीति॥
तै० उ० ३।३

"प्राणही ब्रह्म है, क्यों कि प्राणसे ये सब भूत उत्पन्न होते हैं, प्राणसे जीवित रहते हैं और अंतमें प्राणमें ही जाकर मिल जाते हैं।"

यह प्राणशक्तिका महत्त्व है। प्राण सबसे बडी शक्ति है, सब अन्य शक्तियां प्राणपर ही अवलंबित रहतीं हैं। जबतक प्राण रहता है, तबतक अन्य शक्तियां रहतीं हैं। प्राण जाने लगा, तो अन्यशक्तियां प्रथम चलीं जातीं हैं, और पश्चात् प्राण निकल जाता है। न केवल प्राणियोंकोही प्राणका आधार है, परंतु औषधि वनस्पति तथा अन्य स्थिरचर पदार्थ इन सबको भी प्राणशक्तिका ही आधार है। प्राणशक्ति सर्वत्र व्यापक है और सबके अंदर रहती हुई सबका धारण पोषण कर रही है। प्रजापति परमात्माने सबसे प्रथम जो दो पदार्थ उत्पन्न किये उनमेंसे एक प्राण है और दूसरी रयि हैं। इस विषयमें देखिये—

स मिथुनमुत्पादयते। रयिं च प्राणं च ॥ ४ ॥
आदित्यो ह वै प्राणो रयिरेव चंद्रमा रयिर्वा ।
एतत्सर्वं यन्मूर्तं चामूर्तं च तस्मान्मूर्तिरेव रयिः ॥५॥
प्रश्न उ० १

" परमेश्वरने सबसे प्रथम स्त्री-पुरुषका एक जोडा उत्पन्न किया। उसमें एक प्राण है और दूसरी रयि है। जगत् में आदित्य ही प्राण है, और चंद्रमा तथा मूर्तिमान् जगत् दृश्य और अदृश्य पदार्थमात्र हैं, रयि है।"

अर्थात् एक प्राणशक्ति और दूसरी रयिशक्ति सबसे प्रथम उत्पन्न हुई। इसका भाव निम्न कोष्टकसे ज्ञात होगा, देखिये—

प्राण	रयि
आदित्य	चंद्रमा
पुरुष	स्त्री, प्रकृति
Positive	Negative

जगत् के ये मातापिता हैं, इनसे सृष्टिकी उत्पत्ति हुई है। संपूर्ण जगत् में इनका कार्य है। सूर्यमालामें सूर्य प्राण है, अन्य चंद्र आदि रयि है। शरीरमें मुख्य-प्राण प्राण है और अन्य स्थूल शरीर रयि है, देहमें सीधी बगल प्राण है और बाईं बगल रयि है। इस प्रकार एक दूसरेके अंदर रयि और प्राणशक्तियां व्यापक हैं, किसी स्थानपर ये दोनों शक्तियां नहीं है, ऐसा नहीं है। सर्वत्र रहकर सब स्थिरचरमें इनका कार्य हो रहा है; इसको देखनेसे प्राणकी सर्वव्यापकताका पता लग सकता है। इस प्रकार सब देवोंका देव प्राण है, इसलिये कहा है कि-

कतम एको देव इति प्राण इति ॥ बृ० ३।९।९

" एक देव कौनसा है? प्राण है।" अर्थात् सब देवोंमें मुख्य एक देव कौनसा है? उत्तरमें निवेदन है कि प्राणही सबसे मुख्य और श्रेष्ठ देव है। और देखिये—

प्राणो वाव ज्येष्ठश्च श्रेष्ठश्च ॥ छां० ५।१।१; बृ० ६।१।१

" प्राणही सबसे मुख्य और श्रेष्ठ है।" सब अन्य देव इसके आधारसे रहते हैं। तथा—

(१) प्राणो वै बलं तत्प्राणे प्रतिष्ठितम् ॥ बृ० ५।१४।४
(२) प्राणो वा अमृतम् ॥ बृ० १।६।३
(३) प्राणो वै सत्यम् ॥ बृ० २।१।२०
(४) प्राणो वै यशो बलम् ॥ बृ० १।२।६

"(१) प्राणही बल है, वह बल प्राणमें रहता है। (२) प्राणही अमृत है। (३) प्राणही सत्य है। (४) प्राणही यश और बल है।" इस प्रकार प्राणका महत्त्व है। प्राणकी श्रेष्ठता इतनी है कि उसका वर्णन शब्दोंसे नहीं हो सकता।

प्राण कहांसे आता है ?

परमात्माने प्राणकी उत्पत्ति की है, इसका वर्णन पूर्व स्थलमें हो चुका है। परंतु इस प्राणशक्तिकी प्राप्ति प्राणियोंको कैसी होती है, इस विषयमें निम्न मंत्र देखने योग्य हैं—

आदित्य उदयन् यत्प्राचीं दिशं प्रविशति तेन प्राच्यान् प्राणान् रश्मिषु संनिधत्ते॥ यद्दक्षिणां यत्प्रतीचीं यदुदीचीं यदधो यदूर्ध्वं यदन्तरा दिशो यत्सर्वं प्रकाशयति तेन सर्वान् प्राणान् रश्मिषु संनिधत्ते ॥६॥ स एष वैश्वानरो विश्वरूपः प्राणोऽग्निरुदयते ॥ तदेतदृचाभ्युक्तम् ॥७॥ विश्वरूपं हरिणं जातवेदसं परायणं ज्योतिरेकं तपंतम्॥ सहस्ररश्मिः शतधा वर्तमानः प्राणः प्रजानामुदयत्येष सूर्यः ॥८॥ प्रश्न उ० १।६-८

"सूर्यका जब उदय होता है, तब सबही दिशाओंमें सूर्य-किरणोंके द्वारा प्राण रखा जाता है। इस प्रकार सर्वत्र सूर्यकिरणोंके द्वाराही प्राण पहुंचता है॥ यह सूर्यही प्राणरूप वैश्वानर अग्नि है। यह सूर्य (विश्व-रूपं) सब रूपका प्रकाशक,(हरिणं) अंधकारका हरण करनेवाला, (जात-वेदसं) धनोंका उत्पादक

एक, श्रेष्ठ तेजसे युक्त, सैंकडों प्रकारोंसे सहस्रों किरणोंके साथ प्रकाशनेवाला यह प्रजाओंका प्राण उदयको प्राप्त होता है। "

यह सूर्यका वर्णन बता रहा है कि सूर्यका प्राणके साथ क्या संबंध है। सूर्यकिरणोंके विना प्राणकी प्राप्ति नहीं हो सकती। इस सूर्यमालिकाका मूल प्राण यह सूर्य देवही है। इसी कारण वेदमंत्रोंमें आयु, आरोग्य, बल आदिके साथ सूर्यका संबंध वर्णन किया है। सूर्यप्रकाशका हमारे आरोग्यके साथ कितना घनिष्ठ संबंध है इसका यहां पता लग सकता है। जो लोग सदा अंधेरे स्थानमें रहते हैं, सूर्यप्रकाशमें क्रीडा नहीं करते, सूर्यके प्रकाशसे अपना आरोग्य नहीं संपादन करते हैं और अपने आरोग्यके लिये वैद्यों, हकीमों और डाक्टरोंके घर भरते रहते हैं, विषरूप दवाइयां पीते हैं, उनकी अज्ञानताकी सीमा कहां है? परमात्माने अपार दयासे सूर्य और वायु उत्पन्न किया है और उनसे पूर्ण आरोग्य संपादन हो सकता है। योग्य रीतिसे प्राणायामद्वारा उनका सेवन किया जायगा,तो स्वभावतः ही आरोग्य मिल सकता है। इतना सस्ता आरोग्य होनेपर भी मनुष्य ऐसी अवस्थातक आपहुंचे हैं कि अनंत संपत्तिका व्यय करनेपर भी उनको आरोग्य नहीं प्राप्त होता। पाठको! देखिये कि वेदके उपदेशोंसे जनता कितनी दूर गयी है। अस्तु। विश्वव्यापक प्राण प्राप्त होनेका मार्ग इस प्रकार है। वह प्राण सूर्यमें केंद्रित हुआ है, वहां से सूर्यकिरणोंद्वारा वायुमें आता है और वायुके साथ हमारे खूनमें जाकर हमारा जीवन बढाता है जो प्राणायाम करना चाहते हैं; उनको इस बातका ठीक ठीक पता होना चाहिये। इसी प्राणका और वर्णन देखिये—

देवोंकी घमंड ।

एक समय ऐसा हुआ कि बाह्य सृष्टिमें पृथिवी, आप, तेज, वायु ये देव, तथा शरीरके अंदर वाचा, मन, चक्षु और श्रोत्र ये देव समझने लगे कि हम ही इस जगत्को धारण करते हैं और हमारेसे कोई श्रेष्ठ शक्ति नहीं है। इन देवोंका यह गर्व देखकर प्राण कहने लगा कि, हे देवो! ऐसी घमंड न कीजिए, मैंही अपने आपको पांच विभागोंमें विभक्त करके इसकी धारणा कर रहा हूं। परंतु इस कथनको उन देवोंने माना नहीं, उस समय मुख्य प्राण वहांसे हटने लगा, तब सब देव कांपने लगे। फिर जब प्राण आगया तब देव प्रसन्न हुए। इससे देवोंको पता लगा कि यह सब प्राणकी शक्ति है कि जिसके कारण हम कार्य कर रहे हैं। हमारी ही केवल शक्तिसे हम इस कार्यको चलानेमें सर्वथा असमर्थ हैं। " इस प्रकार जब देवोंने प्राणकी महिमा विदित की, तब वे प्राणकी स्तुति करने लगे। यह स्तुति निम्न मंत्रोंमें है—

प्राण-स्तुति ।

एषोऽग्निस्तपत्येष सूर्य एष पर्जन्यो मघवानेष वायुरेष पृथिवी रयिर्देवः सदसच्चामृतं च यत् ॥५॥ अरा इव रथनाभौ प्राणे सर्वं प्रतिष्ठितम्। ऋचो यजूंषि सामानि यज्ञः क्षत्रं ब्रह्म च ॥ ६ ॥ प्रजापतिश्चरसि गर्भे त्वमेव प्रति जायसे। तुभ्यं प्राणः प्रजास्त्विमा बलिं हरन्ति यः प्राणैः प्रति तिष्ठसि ॥७॥ देवानामसि वह्नितमः पितॄणां प्रथमा स्वधा। ऋषीणां चरितं सत्यमथर्वांगिरसामसि ॥८॥ इंद्रस्त्वं प्राण तेजसा रुद्रोऽसि परिरक्षिता। त्वमन्तरिक्षे चरसि सूर्यस्त्वं ज्योतिषां पतिः॥९॥

यदा त्वमभि वर्षस्यथेमाः प्राण ते प्रजाः। आनंदरूपास्तिष्ठंति कामायान्नं भविष्यतीति ॥ १० ॥ व्रात्यस्त्वं प्राणैक ऋषिरत्ता विश्वस्य सत्पतिः। वयमाद्यस्य दातारः पिता त्वं मातरिश्वनः ॥ ११ ॥ या ते तनू वाचि प्रतिष्ठिता या श्रोते या च चक्षुषि। या च मनसि संतता शिवां तां कुरु मोत्क्रमीः ॥ १२ ॥ प्राणस्येदं वशे सर्वं त्रिदिवे यत्प्रतिष्ठितम् । मातेव पुत्रान् रक्षस्व श्रीश्च प्रज्ञां च विधेहि इति ॥१३॥ प्रश्न उ. २

"यह प्राण अग्नि, वायु, सूर्य, पर्जन्य,इंद्र, पृथिवी, रयि आदि सब है ॥ जिस प्रकार रथनाभिमें आरे जुडे होते हैं, उसी प्रकार प्राणमें सब जुडा हुआ है ॥ ऋचा, यजु, साम, यज्ञ, क्षत्र और ज्ञान सबही प्राणके आधारसे हैं ॥ हे प्राण ! तू प्रजापति है और गर्भमें तूही जाता है। सब प्रजायें तेरे लिये ही बली अर्पण करती हैं। तूं देवोंका श्रेष्ठ संचालक और पितरोंकी स्वकीय धारणशक्ति है। अथर्वा आंगिरस ऋषियोंका सत्य तपाचरण भी तेरा ही प्रभाव है। तू इंद्र, रुद्र,सूर्य है। तू ही तेजसे तेजस्वी हो रहा है। जब तू वृष्टि करता है, तब सब प्रजायें आनंदित होती हैं, क्योंकि उनको बहुत अन्न इस वृष्टिसे प्राप्त होता है ॥ तू ही व्रात्य एक ऋषि और सब विश्वका स्वामी है, हम दाता हैं और तू हम सबका पिता है। जो तेरा शरीर, वाचा, चक्षु, श्रोत्र और मनमें है, उसको कल्याणरूप करो और हमारेसे दूर न हो। जो कुछ त्रिलोकीमें है वह सब प्राणके वशमें है। माताके समान हमारा संरक्षण करो और शोभा तथा प्रज्ञा हमें देओ"।

यह देवोंका बनाया प्राणसूक्त देखनेसे प्राणका महत्त्व ध्यानमें आ सकता है। यह सूक्त कई दृष्टियोंसे विचार करने योग्य है। पहिली बात जो इसमें कही है वह यह है कि चक्षु श्रोत्र आदि

इंद्रियां शरीरमें तथा सूर्य चंद्र वायु आदि जगत्में देव हैं और ये सब प्राणके वशमें हैं। प्राणकी शक्ति इनके अंदर जाती है और इनके द्वारा कार्य करती है। जिस प्रकार प्राणकी शक्ति आंखमें जाकर आंखको देखनेके कार्य करनेके लिये समर्थ बनाती है, उसी प्रकार सूर्यके अंदर विश्वव्यापक प्राणशक्ति रहकर प्रकाश कर रही है। इसलिये आंखकी दृष्टि और सूर्यकी प्रकाशशक्ति न आंख और सूर्यकी है प्रत्युत प्राणकी है। इसी प्रकार अन्य इंद्रियों और देवताओंके विषयमें जानना उचित है। देव शब्द जैसा शरीरमें इंद्रियवाचक है, उसी प्रकार जगत्में अग्नि वायु आदि देवताओंका भी वाचक है। पाठक इस दृष्टिको धारण करके अग्नि आदि देवताओंके सूक्तोंका विचार करें।

उक्त सूक्तमें दूसरी बात यह है कि, अग्नि, सूर्य, इंद्र, वायु, पृथिवी, रुद्र आदि शब्द प्राणवाचक होनेसे इन देवताओंके सूक्तोंमें भी प्राणविद्या प्रकाशित हुई है। इसलिये जो सज्जन अग्नि आदि सूक्तोंका विचार करते हैं, वे उक्तसूक्तोंमें विद्यमान प्राणविद्याका भी विचार करें। अर्थात् अग्नि सूर्य आदि देवताओंके नामोंका "प्राण" अर्थ समझकर उन सूक्तोंका अर्थ करें। जो सूक्त सामान्य अर्थवाले होंगे उनके अर्थ इस प्रकार हो सकते हैं। देखिये—

प्राणरूप अग्नि।

अग्निना रयिमश्नवत् पोषमेव दिवे दिवे ॥
यशसं वीरवत्तमम् ॥ ऋ० १।१।३

"(अग्निना) प्राणसे (रयिं) शोभा और (पोषं) पुष्टि (दिवे दिवे) प्रतिदिन (अश्नवत्) प्राप्त होती है और वीर्ययुक्त यशभी मिलता है।"

यह अत्यंत स्पष्ट ही है कि प्राण चले जायगा तो न तो शरीरकी शोभा बढेगी और न शरीरकी पुष्टि होगी, फिर यश मिलना तो दुरापास्त ही है। इस प्रकार बहुत विचार हो सकता है। यहां उतना स्थान नहीं है, इसलिये यहां केवल दिग्दर्शन ही किया है। वेदके गूढ रहस्यों का इस प्रकार पता लग जाता है, इसलिये पाठकोंको उचित है कि वे वेदका स्वाध्याय प्रतिदिन किया करें। स्वाध्याय करते करते किसी न किसी समय वैदिक दृष्टि प्राप्त होगी और पश्चात् कोई कठिनता नहीं रहेगी।

उक्त सूक्तोंमें तीसरी बात यह है कि अग्नि आदि शब्दोंके गूढ अर्थोंसे प्राणविद्याका महत्त्व उसमें वर्णन किया है। इसका थोडासा स्पष्टीकरण देखिये—

(१) देवानां वह्नितमः असि।=प्राण "इंद्रियोंको" चलानेवाला है, "सूर्योदिकोंको" चलाता है, प्राणायामद्वारा "विद्वान्" उन्नति प्राप्त करते हैं।

(२) पितॄणां प्रथमा स्वधा असि।=संपूर्ण पालक शक्तियों में सबसे श्रेष्ठ और (प्रथमा) अव्वल दर्जेकी पालकशक्ति प्राण है और वह ही (स्व-धा) आत्मत्वकी धारणा करती है।

(३) ऋषीणां सत्यं चरितं असि।=सप्त ऋषियोंका सत्य (चरितं) चालचलन अथवा आचरण प्राण ही करता है। दो आंख, दो कान, दो नाक और एक मुख ये सप्त ऋषी हैं, ऐसा वेद और उपनिषदोंमें कहा है।

(४) अथर्वांगिरसां चरितं असि।=(अ-थर्वा, अंगिरसां) स्थिर अंगोंके रसोंका (चरितं) चलन अथवा भ्रमण प्राण ही करता है। प्राणके कारण पोषक रस सब अंगोंमें भ्रमण करता है और सर्वत्र पहुंचकर सर्वत्र पुष्टि करता है।

इस प्रकारका भाव उक्त सूक्तके वाक्योंमें गुप्त रीति से है। प्रत्येक शब्दका आशय देखनेसे इसका पता लग सकता है। साधारण सूचना देनेके लिये यहां उपयोगी होनेवाले शब्दार्थ नीचे देता हूं- (१) अग्निः = गति देनेवाला, उष्णता और तेज उत्पन्न करनेवाला; (२) सूर्य=प्रेरणा करनेवाला, प्रकाश देनेवाला; (३) पर्जन्यः (पर-जन्यः) = पूर्णता करनेवाला; (४) मघवान्=महत्त्वसे युक्त; (५) वायुः=हिलानेवाला और अनिष्टको दूर करनेवाला; (६) पृथिवी=विस्तृत, आधार देने· वाली; (७) रयिः=तेज, संपत्ति, शरीरसंपत्ति आदि; (८) देवः=क्रीडा, विजिगीषा, व्यवहार, तेज, आनंद, हर्ष, निद्रा, उत्साह, स्फूर्ति आदि देनेवाला, दिव्य;(९) अ-मृत=अमरत्वसे युक्त; (१०) प्रजा-पतिः=चक्षु आदि सब प्रजाओंका पालक, प्रजा उत्पन्न करनेवाला; (११) वह्नितमः=अत्यंत प्रेरक; (१२) इंद्रः =ऐश्वर्यवान्, भेदन करनेवाला; (१३) रुद्रः= (रुत्-रः) शब्दका प्रेरक; (रुद्-रः) दुःखको दूर करके आरोग्य देनेवाला; (१४) व्रात्यः = (व्रत) नियमके अनुसार आचरण करनेवाला। इस प्रकार शब्दोंके अर्थ देखनेसे पता लगेगा, कि उक्त शब्दोंद्वारा प्राणकी किस शक्तिका कैसा उत्तम वर्णन किया गया है। वैदिक शब्दोंके गूढ आशय देखनेसेही वेदकी गंभीरता व्यक्त होती है। आशा है कि पाठक उक्त प्रकार उक्त सूक्तका विचार करेंगे।

इस प्रकार प्राणकी मुख्यता और श्रेष्ठता है और वह प्राण सूर्यकिरणोंके द्वारा प्राणियोंतक पहुंचता है। प्राण सूर्यकिरणों से वायुमें आता है, वायु श्वाससे अंदर जाता है, उस समय वह मनुष्यके शरीरमें पहुंचता है। प्राणायामके समय इस प्रकार इस प्राणका महत्त्व ध्यानमें धरना चाहिए।

प्राणका प्रेरक ।

केन उपनिषद्में प्राणके प्रेरकत्वका विचार किया है । प्राणके आधीन संपूर्ण जगत् है, तथापि प्राण को प्रेरणा देनेवाला कौन है ? जिस प्रकार दीवान के आधीन सब राज्य होता है, उसी प्रकार प्राणके आधीन सब इंद्रियादिकोंका राज्य है । परंतु राजा की प्रेरणासे दीवान कार्य करता है,उस प्रकार यह प्राणका प्रेरक कौन है? यह प्रश्नका तात्पर्य है ।

केन प्राणः प्रथमः प्रैति युक्तः ॥ केन उ. १।१

"किससे नियुक्त होता हुआ प्राण चलता है?" अर्थात् प्राण की प्रेरक शक्ति कौनसी है ? इसके उत्तरमें उपनिषद् कहता है कि—

स उ प्राणस्य प्राणः ॥ केन उ० १।२

"वह आत्मा प्राणका प्राण है" अर्थात् प्राणका प्रेरक आत्मा है । इसका और वर्णन देखिये—

यत्प्राणेन न प्राणिति येन प्राणः प्राणीयते ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥
केन उ० १।८

"जिसका जीवन प्राणसे नहीं होता, परंतु जिससे प्राणका जीवन होता है, वह (ब्रह्म) आत्मा है, ऐसा तू समझ लो । यह नहीं कि जिसकी उपासना की जाती है । "

अर्थात् आत्माकी शक्तिसे प्राण अपना सब कारोबार चला रहा है, इसलिये प्राणकी प्रेरक शक्ति आत्मा ही है । इस विषयमें ईशोपनिषद्का मंत्र देखने योग्य है—

योऽसावसौ पुरुषः सोहमस्मि ॥ ईश. १६
योऽसावादित्ये पुरुषः सोऽसावहम् ॥ वा० यजु० १७

"जो यह (असौ) असु अर्थात् प्राणके अंदर रहनेवाला पुरुष है, वह मैं हूं ।"

मैं आत्मा हूं, मेरे चारों ओर प्राण विद्यमान है और मैं उस का प्रेरक हूं । मेरी प्रेरणासे प्राण चल रहा है और सब इंद्रियों की शक्तियोंको उत्तेजित कर रहा है। इस प्रकार विश्वास रखना चाहिए और अपने प्रभावका गौरव देखना चाहिए। इस विषयमें ऐतरेय उपनिषद्का वचन देखिये—

नासिके निरभिद्येतां नासिकाभ्यां प्राणः प्राणाद्वायुः ॥
ऐ० उ० १।१।४

वायुः प्राणो भूत्वा नासिके प्राविशत् ॥
ऐ० उ० १।२।४

"नासिकाके स्थानमें इंद्रिय हो गये, नासिकासे प्राण और प्राणसे वायु हो गया। " अर्थात् प्राण से वायु हो गया। आत्माकी प्रबल इच्छाशक्ति थी कि मैं सुगंधका आस्वाद ले लूं। इस इच्छाशक्तिसे नासिकाके स्थानमें दो छेद बन गये, ये ही नासिकाके दो छेद हैं। इस प्रकार नाक बनते ही प्राण हुआ और प्राणसे वायु बना है । आत्माकी इच्छाशक्ति कितनी प्रबल है इसकी कल्पना यहां स्पष्ट हो सकती है। इस प्रकार शरीरमें छेद करनेवाली शक्ति जो शरीरके अंदर रहती है वह ही आत्मा है। इसको इंद्र कहते हैं क्यों कि यह आत्मा (इदं-द्र) इस शरीरमें सुराख करनेकी शक्ति रखता है। इसकी प्रबल इच्छाशक्तिसे विलक्षण घटनायें यहां सिद्ध हो रहीं हैं, इसका अनुभव अपने शरीरमें ही देखा जा सकता है। जो ऐसा समर्थ जीवात्मा है, वह ही प्राणका प्रेरक है। इसका सेवक प्राण है, यह प्राण वायुका पुत्र है, क्यों कि ऊपर दिये मंत्रमें कहा है कि " वायु प्राण बनकर नासिकामें प्रविष्ट हुआ

है।" इसलिये यह प्राण वायुका पुत्र है। यही "मारुती" है, मारुतीका अर्थ 'मारुत्' अर्थात् वायुका पुत्र। विश्वमें व्यापनेवाला पवन वायु है, उसका एक अंश शरीरमें अवतार लेता है, इसलिये इसको 'पवनात्मज' कहते हैं। यही हनुमान्, मारुती, राम-सखा है। अवतारकी मूल कल्पना यहां व्यक्त हो सकती है। विश्वव्यापक शक्तियां अवताररूपसे कर्मभूमिमें अर्थात् इस देहमें आकर कार्य करतीं हैं। वायुके पुत्रोंकी जो कल्पना पौराणिक वाङ्मयमें है वह यही है। इसको चिरंजीव कहा है, इसका कारण इस लेखमें पूर्व स्थलमें बतायाही है। प्राणके अमरत्वके साथ इसका चिरंजीवत्व सिद्ध होना है। इस प्रकार यह हनुमानजीका रूपक है। इसका संपूर्ण वर्णन किसी अन्य स्थानमें किया जायगा। यहां संक्षेपसे सूचना मात्र लिखा है। अर्थात् हनुमानजीकी उपासना मूलमें प्राणोपासना ही है। यह "दशरथके राम" का सहायक है, दश इंद्रियोंके रथमें जो आनंदरूप आत्मा है, उसका यह प्राण नित्य सहायक ही है। तथा "दशमुखकी लंका" को जलानेवाला है। दश इंद्रियोंसे मुख्यतया भोगमें जो प्रवृत्तियां होतीं हैं, उसका प्राणायामके अभ्याससे दहन होता है। इत्यादि विचारसे पूर्वोक्त कल्पना अधिक स्पष्ट होगी। पाठक इसका विचार करें। पूर्वोक्त उपनिषद्में "प्राणका प्रेरक आत्मा" कहा है, और उक्त इतिहासमें "वायुपुत्रका प्रेरक दाशरथी राम" कहा है, दोनोंका तात्पर्य एकही है। सूज्ञ वाचक विचारके द्वारा इसके मूल भावको जान सकते हैं।

पूर्वोक्त ईशोपनिषद् के वचनमें "असौ अहं" शब्द आगये हैं। "प्राणके अंदर रहनेवाला मैं आत्मा" यही भाव बृहदारण्यक के निम्न वचनमें है—

यः प्राणे तिष्ठन्प्राणादंतरो यं प्राणो न वेद यस्य प्राणः शरीरं यः प्राणमंतरो यमयति,एष त आत्मा अंतर्याम्यमृतः॥

बृ. ३।७।१६

" जो प्राणके अंदर रहता है, प्राणके अंदर रहनेपर भी जिसको (प्राणः न वेद) प्राण जानता नहीं, जिसका शरीर प्राण है, जो अंदरसे (प्राणं यमयति) प्राणका नियमन करता है, (एषः) यह तेरा अंतर्यामी अमर आत्मा है। "

प्राणके अंदर रहनेवाला और प्राणका नियमन करनेवाला यह आत्मा है; इस कथनके अनुसार आत्माका प्राणके साथ नित्यसंबंध है, यह बात स्पष्ट होती है। ' मैं आत्मा हूं, प्राण मेरा अनुचर है और प्राणके आधीन संपूर्ण इंद्रियां और शरीर है। यह मेरा वैभव और साम्राज्य है। इसका मैं सच्चा सम्राट् बनूंगा और विजयी तथा यशस्वी बनूंगा,' यह वैदिक धर्मकी आदर्श कल्पना है। इस प्राणका वर्णन अन्य वचनोंमें हुआ है-

प्राणो वै रं प्राणे हीमानि भूतानि रमंते॥ बृ. ५।१२।१

प्राणो वा उक्थं प्राणे हीदं सर्वमुत्थापयति ॥१॥

प्राणो वै यजुः प्राणे हीमानि सर्वाणि भूतानि युज्यंते॥२॥

प्राणो वै साम प्राणे हीमानि सर्वाणि भूतानि सम्यंचि॥३॥

प्राणो वै क्षत्रं प्राणो हि वै क्षत्रं त्रायते ॥४॥ बृ०उ.५।१३

"प्राण 'र' है, क्योंकि सब भूत प्राणमें रमते हैं। प्राण 'उक्थ' है, क्योंकि प्राण सबको उठाता है। प्राण 'यजु' है, क्योंकि प्राणमें सब भूत संयुक्त होते हैं। प्राण 'साम' है, क्योंकि सब भूत प्राणमें सम्यक् रीतिसे रहते हैं। प्राण 'क्षत्र' है, क्योंकि प्राणही क्षतों अर्थात् कष्टोंसे बचाता है। "

इसका प्रत्येक मुख्य शब्द प्राणकी शक्तिका वर्णन कर रहा है। 'साम, यजु ' आदि शब्द अन्यत्र वेदवाचक होते हुए भी

यहां केवल गुणवाचक हैं। इस शब्दप्रयोगसे स्पष्ट पता लग जाता है कि वैदिक समयमें शब्दोंका विशेष रीतिसे भी उपयोग होता था और सामान्य रीतिसे भी होता था। यहां सामान्य रीतिका प्रयोग है। जहां सामान्य रीतिसे प्रयोग होगा, वहां उसका यौगिक अर्थ करना चाहिये और जहां विशेष रीतिसे प्रयोग होगा, वहां योग-रूढिका अर्थ समझना चाहिए। इस प्रकार एकही शब्द के दोनों अर्थ होनेपर भी अर्थविषयक ठीक व्यवस्था लगाई जा सकती है। आशा है कि पाठक इस व्यवस्थाको वेदमंत्रोंमें देखेंगे। यह बात वेदका अर्थ करनेके समय विशेष महत्त्वकी है, इसलिये यहां लिखी है।

अंगोंका रस।

शरीरके अंगोंमें एक प्रकारका जीवनका आधाररूप रस है। इसका वर्णन निम्न मंत्रमें है—

आंगिरसोऽगानां हि रसः, प्राणो वा अंगानां रसः ...
... ... तस्माद्यस्मात्कस्माच्चांगात् प्राण उत्क्रामति,
तदेव तच्छुष्यति॥ बृ० १।३।१९

"प्राण ही अंगोंका रस है, इसलिये जिस अंग से प्राण चले जाता है, वह अंग सूख जाता है।"

वृक्षोंमें भी यही बात दिखाई देती है। यह अंगरसका महत्त्व है। जीवात्माकी इच्छासे प्राण के द्वारा यह रस सब शरीरमें घुमाया जाता है और प्रत्येक अंगमें आरोग्य और बल बढाया जाता है। प्रबल इच्छाशक्तिद्वारा आरोग्य संपादन करने का उपाय इससे विदित होता है। इच्छाशक्ति और प्राण इनका बल बढानेसे उक्त सिद्धि होती है। आत्माकी प्रेरणा प्राणमें होती है, प्राणसे मन संलग्न रहता है, मनसे इच्छाशक्तिका

नियमन होता है, इच्छासे रुधिरमें परिणाम होकर इसके द्वारा संपूर्ण शरीरमें इष्ट कार्य होता है। देखिये—

पुरुषस्य प्रयतो वाङ्मनसि संपद्यते, मनः प्राणे,
प्राणस्तेजसि, तेजः परस्यां देवतायाम् ॥छां० उ० ६।८।६

"पुरुषकी वाणी मनमें, मन प्राणमें, प्राण तेज में और तेज परदेवतामें संलग्न होता है।" यही परंपरा है। परदेवताका तात्पर्य यहां आत्मा है। प्राणविद्याकी परम सिद्धि इस प्रकारसे सिद्ध होती है।

प्राण और अन्य शक्तियां।

प्राणके आधीन अनेक शक्तियां हैं, उनका प्राणके साथ संबंध देखनेके लिये निम्न मंत्र देखिये—

प्राणो वाव संवर्गः। स यदा स्वपिति, प्राणमेव
वागप्येति, प्राणं चक्षुः, प्राणं श्रोत्रं,प्राणं मनः, प्राणो
ह्येवैतान् संवृङ्क्ते ॥३॥ छां० ४।३।३

"जब यह सोता है तब वाक्, चक्षु, श्रोत्र, मन आदि सब प्राणमेंही लीन होतीं हैं, क्यों कि प्राणही इनका संवारक है।"

जिस प्रकार सूर्य उगनेके समय उसके किरण फैलते हैं और अस्तके समय फिर अंदर लीन होते हैं, इसी प्रकार प्राण-रूपी सूर्यका जागृतिके प्रारंभ में उदय होता है, उस समय उसकी किरणें इंद्रियादिकोंमें फैलतीं हैं और निद्राके समय फिर उसीमें लीन होतीं हैं। इस प्रकार प्राणका सूर्य होना सिद्ध होता है। इसका सादृश्य एक अंशमें है, यह बात भूलना नहीं चाहिये। सूर्यके समान प्राणकाभी कभी अस्त नहीं होता, परंतु अस्त और उदय ये शब्द हमारी अपेक्षासे उसमें प्रयुक्त हो रहे हैं। इस विषयमें निम्न वचन और देखिये —

पतंग।

स यथा शकुनिः सूत्रेण प्रबद्धो, दिशं दिशं पतित्वा, अन्यत्रायतनमलब्ध्वा, बंधनमेवोपश्रयत, एवमेव खलु, सोम्य, तन्मनो दिशं दिशं पतित्वा अन्यत्रायतनमलब्ध्वा, प्राणमेवोपश्रयते, प्राणबंधनं हि सोम्य मनः॥

छां० उ० ६।८।२

"जिस प्रकार पतंग, डोरीसे बंधा हुआ, अनेक दिशाओंमें घूमकर, दूसरे स्थानपर आधार न मिलनेके कारण, अपने मूळ स्थानपरही आजाता है; इसी प्रकार निश्चयसे, हे प्रिय शिष्य! वह मन अनेक दिशाओंमें धूम धाम कर, दूसरे स्थान पर आश्रय न मिलनेके कारण; प्राणकाही आश्रय करता है, क्यों कि, हे प्रिय शिष्य! मन प्राणके साथही बंधा है।"

इस प्रकार प्राणका मनके साथ संबंध है। यही कारण है कि प्राणायामसे प्राण बलवान् होनेपर मन भी बलिष्ठ होता है, प्राणका निरोध होनेसे मन का संयम होता है। प्राणकी चंचलता से मन चंचल होता है और प्राणकी स्थिरतासे मन भी स्थिर होता है। इससे प्राणायामका महत्त्व और उसका मनके संयम के साथ संबंध विदित हो सकता है।

प्राणसे मनका संयम होनेके कारण अन्य इंद्रियां भी प्राणके निरोधसे स्वाधीन होतीं हैं, यह स्पष्ट ही है; क्यों कि प्राणसे मनका संयम और मनके वश होनेसे अन्य इंद्रियोंका वश होना स्वाभाविक ही है। इस प्रकार प्राणायामसे संपूर्ण शक्तियां वशीभूत होतीं हैं। यही भाव निम्न वचनमें गुप्त रीतिसे है—

वसु रुद्र आदित्य।

प्राणा वाव वसव एते हीदं सर्वं वासयंति ॥१॥
प्राणा वाव रुद्रा एते हीदं सर्वं रोदयंति ॥२॥
प्राणा वावादित्याः एते हीदं सर्वमाददते ॥३॥

छां० उ० ३।१६

" प्राण वसु हैं क्यों कि ये सबको वसाते हैं। प्राण रुद्र हैं,क्यों कि इनके चले जानेसे सब रोते हैं। प्राण आदित्य हैं, क्योंकि ये सबको स्वीकारते हैं। "

इस स्थानपर " प्राणा वाव रुद्राः एते हीदं सर्वं रोदनं द्रावयन्ति " अर्थात् " प्राण रुद्र हैं, क्योंकि ये इस सब दुःखको दूर करते हैं। " ऐसा वाक्य होता तो प्राणका दुःखनिवारक कार्य व्यक्त हो सकता था। परंतु उपनिषद्में " एते हीदं सर्वं रोदयंति। " अर्थात् ये प्राण जब चले जाते हैं, तब वे सबको रुलाते हैं, इतना प्राणोंपर प्राणियोंका प्रेम हैं, ऐसा लिखा है। शतपथादिमें भी रुद्रका रोदनधर्मही वर्णन किया है, परंतु दुःखनिवारक धर्म भी उनमें उससे अधिक प्रबल है। इसका पाठक विचार करें। इस प्रकार प्राणका महत्त्व होनेसे ही कहा है-

प्राणो ह पिता, प्राणो माता, प्राणो भ्राता,
प्राणः स्वसा, प्राण आचार्यः, प्राणो ब्राह्मणः॥ छां. उ. ७।१५।१

" प्राण ही माता, पिता, भाई, बहन, आचार्य, ब्राह्मण आदि है। " ये शब्द प्राणका महत्त्व बता रहे हैं- (१) माता-मान्य हित करनेवाला; (२) पिता-पाता, पालक, संरक्षक; (३) भ्राता-भरण पोषण करनेवाला; (४) स्वसा-(सु-असा) उत्तम प्रकार रखनेवाला; (५) आचार्य-आत्मिक गुरु है, क्योंकि प्राणके आयामसे आत्माका साक्षात्कार होता है इसलिये; (६)

ब्राह्मणः- यह ब्रह्मके पास ले जानेवाला है ।

ये शब्दोंके मूलभाव यहां प्राणके गुण बता रहे हैं । यह प्राण-वर्णन है। इतना प्राणका महत्त्व है,इसलिये अपने प्राणके विषयमें कोईभी उदासीन न रहे । सब लोक स्वर्ग प्राप्त करनेकी इच्छा करते हैं, वह स्वर्ग प्राणही है। देखिये—

तीन लोक ।

वागेवायं लोको मनो अंतरिक्षलोकः प्राणोऽसौ लोकः॥

बृ० १।५।४

" वाणी यह पृथ्वीलोक है, मन अंतरिक्षलोक है और प्राण ही स्वर्गलोक है । "

इसलिये ही प्राणायामके अभ्याससे स्वर्गधामकी प्राप्ति होती है । देखिये प्राणकी कितनी श्रेष्ठता है !! इस प्रकार उपनिषदोंमें प्राणविद्या है। अब विस्तार करनेकी कोई जरूरत नहीं है । संक्षेपसे आवश्यक बातोंका उल्लेख यहां किया है । इससे उपनिषदों की प्राण विद्याकी कल्पना हो सकती है । जो पाठक इसकी और अधिक गहराई देखना चाहते हैं, वे स्वयं उपनिषदोंमेंही इसको देख सकते हैं । आशा है कि पाठक इस प्रकार इस विद्याका अभ्यास करेंगे ।

प्राणायामसे बहुत प्रकारकी शक्तियां प्राप्त होतीं हैं, ऐसा प्राण के विविध शास्त्रोंमें लिखा है । प्राणायामका अभ्यास करनेसेही उक्त शक्तियोंकी प्राप्ति होनाही संभव है । अभ्यास के विना उन्नति की प्राप्ति सर्वथाही असंभव है । प्राणायामका अभ्यास करनेके लिये प्राणकी शक्तिकी कल्पना प्रथम होनेकी आवश्यकता है। वह कार्य सिद्ध होनेके लिये इस पुस्तकका उपयोग हो सकता है । इस पुस्तकको अच्छी प्रकार पढनेके पश्चात् मनन-

द्वारा अपनी प्राणशक्तिका आकलन करना चाहिए। अपने प्राण का यह स्वरूप है, उसका यह महत्त्व है और इसकी उपासनासे इस प्रकार लाभ हो सकता है, इत्यादि विषयकी उत्तम कल्पना इस पुस्तकके अभ्याससे होगी। इतनी कल्पना दृढ होनेके पश्चात् प्राणायामका अभ्यास करनेसे बहुत लाभ हो सकता है। इस प्राणायामके अनुष्ठानका प्रकार विस्तारपूर्वक उत्तरार्ध में लिखा है। इसके अभ्यासके पश्चात् पाठक उस पुस्तकको अवश्य पढें और उस प्रकार अनुष्ठान करके अपनी उन्नतिका साधन करें।

व्यक्तिमें शांति, जनतामें शांति और जगत्‌में शांति।

योगसाधन-माला ।

संध्योपासना ।

योगकी दृष्टिसे संध्या करनेकी प्रक्रिया। (इसमें हमारा 'संध्या-का अनुष्ठान' यह पुस्तक संमिलित है) मू. १॥) डेढ रु. डा.व्य. ।=)

ब्रह्मचर्य ।

इस सचित्र पुस्तकमें "अथर्ववेदीय ब्रह्मचर्य-सूक्त" का विवरण है। ब्रह्मचर्य-साधनके योगासन तथा वीर्यरक्षणके अनुभवसिद्ध उपाय इस पुस्तकमें दिये हैं। मू. १) रु. डा. व्य. ।-)

वैदिक प्राणविद्या ।

प्राणायाम करने के समय जिस प्रकार मनकी भावना रखनी चाहिये, उसका वर्णन इस पुस्तक में है। मू० ॥) डा. व्य. ।-)

आसन ।

इसमें आसनोंका वर्णन चित्रोंके समेत है। मू. २) रु. डा. व्य. ।≡) आसनोंका चित्रपट। २० " × ३० " इंच कागज पर सब आसन दिखाये दिये गये हैं। मू. ≡) डा. व्य -)

योगसाधनकी तैयारी ।

योगाभ्याससे अपनी उन्नति करनेका पुस्तक मू. ।॥) डा. व्य. ।)

सूर्यभेदन व्यायाम ।

(सचित्र) बलवर्धक योगके व्यायाम। मू. ॥) डा. व्य. =)

संस्कृत-पाठ-माला ।

चोवीस पुस्तकोंका मू० ६॥)और डा०व्य० ।॥-); बारह पुस्तकोंका मूल्य ४) और डा. व्य. ॥); प्रति भागका मूल्य ।=) छः आने और डा. व्य. -) एक आना। अत्यंत सुगम रीतिसे संस्कृत भाषाका अध्ययन करनेकी अपूर्व पद्धति ।

इस पद्धतिकी विशेषता यह है—

१ प्रथम, द्वितीय और तृतीय भाग । इन भागोंमें संस्कृतके साथ साधारण परिचय करा दिया गया है।

२ चतुर्थ भाग । इस चतुर्थ भागमें संधिविचार बताया है ।

३ पंचम और षष्ठ भाग । इन दो भागोंमें संस्कृतके साथ विशेष परिचय कराया है ।

४ सप्तम से दशम भाग । इन चार भागोंमें पुल्लिंग, स्त्रीलिंग और नपुंसलिंगी नामोंके रूप बनानेकी विधि बताई है ।

५ एकादश भाग । इस भागमें "सर्वनाम" के रूप बताये हैं ।

६ द्वादश भाग । इस भागमें समासोंका विचार किया है ।

७ तेरहसे अठारहवें भागतकके ६ भाग । इन छः भागोंमें क्रियापद-विचार की पाठविधि बताई है ।

८ उन्नीससे चोवीसवें भागतकके ६भाग। इन छः भागोंमें वेदके साथ परिचय कराया है ।

अर्थात् जो लोग इस पद्धतिसे अध्ययन करेंगे, उनको अल्प परिश्रमसे बडा लाभ हो सकता है ।

मंत्री-स्वाध्याय-मंडल,औंध, (जि०सातारा)

संस्कृत-पाठ-माला।

चोवीस पुस्तकोंका मू० ६॥) और डा० व्य० ।॥-); बारह पुस्तकों का मूल्य ४) और डा. व्य. ॥); प्रति भागका मूल्य ।=) छः आने और डा. व्य. -) एक आना। अत्यंत सुगम रीतिसे संस्कृत भाषाका अध्ययन करनेकी अपूर्व पद्धति।

इस पद्धतिकी विशेषता यह है—

१ प्रथम, द्वितीय और तृतीय भाग। इन भागोंमें संस्कृतके साथ साधारण परिचय करा दिया गया है।

२ चतुर्थ भाग। इस चतुर्थ भागमें संधिविचार बताया है।

३ पंचम और षष्ठ भाग। इन दो भागोंमें संस्कृतके साथ विशेष परिचय कराया है।

४ सप्तम से दशम भाग। इन चार भागोंमें पुल्लिंग, स्त्रीलिंग और नपुंसलिंगी नामोंके रूप बनानेकी विधि बताई है।

५ एकादश भाग। इस भागमें "सर्वनाम" के रूप बताये हैं।

६ द्वादश भाग। इस भागमें समासोंका विचार किया है।

७ तेरहसे अठारहवें भागतकके ६ भाग। इन छः भागोंमें क्रियापद-विचार की पाठविधि बताई है।

८ उन्नीससे चोवीसवें भागतकके ६ भाग। इन छः भागोंमें वेदके साथ परिचय कराया है।

अर्थात् जो लोग इस पद्धतिसे अध्ययन करेंगे, उनको अल्प परिश्रमसे बडा लाभ हो सकता है।

मंत्री-स्वाध्याय-मंडल, औंध (जि० सातारा)

मुद्रक तथा प्रकाशक—श्रीपाद दामोदर सातवळेकर,
भारत-मुद्रणालय, औंध, (जि. सातारा.)